# असामान्य एवं विलक्षण किन्तु संभव और सुलभ

# असामान्य और विलक्षण किंतु संभव और सुलभ

लेखक :
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-३
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

पुनरावृत्ति सन् २००८ मूल्य : २१.०० रुपया

# विषय-सूची


| अध्याय | | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| १. | दैहिक सीमाओं से परे आत्मा का विचरण | ३ |
| २. | असामान्य और विलक्षण किंतु संभव और सुलभ | २० |
| ३. | चाहे जो बन जाएँ, इतनी भर ही छूट है | ३३ |
| ४. | मनुष्येतर प्राणी भी कम रोचक रहस्यमय नहीं | ४६ |
| ५. | प्रकृति अनुसरण का पुरस्कार | ६३ |
| ६. | अतींद्रिय क्षमताओं का आधार और विज्ञान | ७७ |
| ७. | जो रहस्य है, वह इंद्रिय चेतना से परे | ९५ |


*सर्प के भय या हिंसक जानवर के डर से कई व्यक्ति जो सामान्य स्थिति में एक फीट भी नहीं उछल सकते थे, भयावेश में तीन-तीन मीटर ऊँची दीवार कूद जाते हैं, इस तरह की घटनाएँ बताती हैं कि मनुष्य शरीर की सामर्थ्य वैज्ञानिक स्तर पर अब तक हुई जानकारी से बहुत अधिक है। यह अद्‌भुत सामर्थ्य बहुधा सुप्त स्थिति में पड़ी रहती है।*

*शरीर में कई सूक्ष्म तथा अत्यंत महत्त्वपूर्ण संस्थान हैं। उनमें भरी हुई शक्तियों को जाग्रत कर मनुष्य भीम की तरह बलवान, नागार्जुन की तरह रसायनज्ञ, संजय की तरह दिव्य-दृष्टि संपन्न, अर्जुन की तरह लोक-लोकांतर में आने-जाने की क्षमता वाला, रामकृष्ण की तरह परमहंस और गुरु गोरखनाथ की तरह सिद्धि संपन्न बन सकता है।*

# दैहिक सीमाओं से परे आत्मा का विचरण

आद्य शंकराचार्य ने एक शास्त्रार्थ प्रयोजन में कामशास्त्र का अनुभव प्राप्त करने के लिए अपने शरीर में से आत्मा को निकालकर मृत सुधन्वा के शरीर में प्रवेश किया था। परकाया प्रवेश की इस प्रक्रिया का उद्‌देश्य पूरा होने पर वे पुनः अपने शरीर में वापस लौट आए थे।

रामकृष्ण परमहंस ने अपनी आत्मा का विवेकानंद में प्रवेश करा दिया था। परमहंस जी के स्वर्गवास के अवसर पर विवेकानंद को भान हुआ कि कोई दिव्यप्रकाश उनके शरीर में घुस पड़ा और उनकी नस-नस में नई शक्ति भर गई।

शंकराचार्य के उदाहरण से मृत शरीर पर किसी अन्य जीवात्मा का आधिपत्य हो सकने की बात प्रकाश में आती है और परमहंस जी के परकाया प्रवेश से जीवित मनुष्य में किसी समर्थ व्यक्तित्व के प्रवेश कर जाने का तथ्य सामने आता है। परकाया प्रवेश की आध्यात्म सिद्धियों के संदर्भ में चर्चा होती रही है। यह आंशिक और समान रूप से पारस्परिक विनियोग की तरह संभव है। शक्ति-पात दीक्षा में गुरु अपना एक अंश शिष्य के व्यक्तित्व में हस्तांतरित करता है।

आत्मा स्वामी है और शरीर सेवक। आत्मा यात्री है और शरीर वाहन। स्वामी की अपनी दुर्बलताएँ ही सेवक के श्रम-सहयोग से

वंचित रह सकती हैं। स्वेच्छाचार बरतने वाले सेवकों को देखकर यही अनुमान लगाया जा सकता है कि स्वामी को अपने पद का ध्यान नहीं रहा। वाहन रहते हुए भी यदि सवार को पैदल चलना पड़े तो समझना चाहिए कि उसे अपने साधन के उपभोग की समुचित जानकारी नहीं है।

अपने शरीर पर तो आत्मा का आधिपत्य होता ही है। यदि उनकी सामर्थ्य सबल है तो वह दूसरों के शरीर का भी अपने लिए उपयोग कर सकता है। ऐसा जीवित अवस्था में भी हो सकता है और प्रेतात्माएँ भी वैसा कर सकती हैं।

दो अमेरिकी प्रोफेसरों ने मिलकर एक किताब लिखी है, 'बीसवीं सदी में अचेतन मनोविज्ञान की खोज।' इसमें आत्मा की स्वतंत्र सत्ता तथा पुनर्जन्म को सिद्ध करने वाले अनेक प्रमाण दिए गए हैं। इसी पुस्तक में परकाया प्रवेश संबंधी कई घटनाओं-तथ्यों का संकलन किया गया है। उनमें से कुछ निम्न हैं :—

एक बर्तन विक्रेता घर से टहलने निकला और गायब हो गया। जाकर मशीनों की मरम्मत का काम करने लगा। दो वर्ष बाद सहसा घर की सुधि आई। जैसे गहरी नींद टूटी हो। घर वापस पहुँचा। पता चला, मशीनों की मरम्मत का वही काम एक अन्य व्यक्ति करता था, जो कुछ ही समय पहले मरा था। बर्तन विक्रेता दो वर्ष तक उसी व्यक्ति की तरह काम करता रहा। वहाँ सभी कर्मचारियों के नाम, व्यवहार, सराय, होटल सब उसे याद थे। घर लौटकर धीरे-धीरे आते वह सब भूल गया और पूर्ववत् अपना पुराना कसेरे का धंधा करने लगा। डॉ० आसवन ने इस घटना को विस्तार से प्रकाशित किया। अनुमान यह किया गया कि मशीनों की मरम्मत करने वाले व्यक्ति की आत्मा ने कसेरे की आत्मा को दो वर्ष तक अपने कब्जे में रखा। जब वह आत्मा कब्जा छोड़कर चली गई तो पुरानी आत्मा अपनी स्वतंत्र सत्ता का पुनः परिचय दे सकी। इस बीच वह दबी रही।

कभी-कभी ऐसे घटनाक्रम भी प्रकाश में आते हैं कि किसी मृतात्मा ने किसी दूसरे जीवित मनुष्य के शरीर पर आधिपत्य जमा लिया और उसका उपयोग मन मरजी से करती रही। भूत-प्रेतों के आवेश की चर्चा झाड़-फूँक के क्षेत्र में आए दिन होती रहती है। उनमें अधिकतर तो मानसिक दुर्बलता, मूढ़ मान्यता, अर्द्ध उन्मुक्त की मनःस्थिति, झूठ-मूठ का नाटक एवं संबद्ध व्यक्तियों द्वारा छोड़ी गई छाप ही प्रमुख कारण होती है, फिर भी ऐसे तथ्यों की कमी नहीं जिनमें मृतात्माओं के अन्य शरीर पर अधिकार जमा लेने की बात सिद्ध होती है। इस प्रकार के अधिकार प्रायः अस्थायी होते हैं। आत्माएँ अपना उद्देश्य पूरा करके उस आधिपत्य को अनायास ही छोड़कर चली जाती हैं अथवा उदासीन हो जाती हैं।

किन्हीं विशिष्ट आत्माओं ने दूसरों के शरीर में प्रवेश करके उनसे विशिष्ट काम कराए, ऐसी घटनाएँ संसार के अनेक भागों में घटित होती रही हैं।

विश्वविख्यात कलाकार गोया की आत्मा ने अमेरिका की एक विधवा हैनरोट के शरीर में प्रवेश करके उनके द्वारा गवालन नामक एक अद्भुत कलाकृति का सृजन कराया था। यह समाचार उन दिनों अमेरिका में अनेक पत्रों में प्रकाशित हुआ था।

रोड्स नगर के एक नागरिक ऐसेलबर्न बैंक से दस हजार का चेक भुनाकर निकले और सहसा गायब हो गए। घर वाले ढूँढ़-ढूँढ़कर थक गए। ऐसेलबर्न सैकड़ों मील दूर एक नगर में जाकर वहाँ चीनी का व्यापार करने लगा। नाम बताता अपना—ए० सी० ब्राउन। उसने पहले यह व्यापार कभी भी नहीं किया था। अब एक निष्णात व्यापारी की तरह काम कर रहा था। दो माह बाद जैसे स्वप्न टूटा, वह चौंका। 'यह चीनी का व्यापार मैं ने तो कभी नहीं किया और मेरा घर भी यहाँ नहीं है।' वह भागा और पुराने घर जा पहुँचा। इस घटना का भी निष्कर्ष यही निकला कि किसी मृत व्यापारी की आत्मा ने उसे वशवर्ती कर लिया था।

१८९४ में डॉक्टर डामा के पास एक सुशिक्षित बेहोश रोगी आया। वह चंगा हो गया, पर शिशुवत आचरण व चिंतन करने लगा। पढ़ना-लिखना भूल चुका था। कई महीनों तक यही दशा रही। फिर उसे जैसे कुछ याद आया और वह पुनः प्रौढ़ व्यक्तित्व का स्वामी बन गया।

बोस्टन के डॉ० नार्टन प्रिंस के पास आई एक महिला की भी कुछ यही स्थिति थी। वह प्रतिदिन कुछ घंटे तक एक अन्य ही व्यक्तित्व बन जाती। व्यवहार, क्रिया-कलाप, उच्चारण, सब भिन्न। वह एक स्वस्थ पुरुष जैसा आचरण करती। अपना नाम भी किसी पुरुष का नाम बताती। फिर अपने महिला व्यक्तित्व में लौट आती।

## परकाया प्रवेश

एक ही तारीख, एक ही दिन धरती के ठीक विपरीत दो भागों में एक ही नाम के दो व्यक्ति बीमार पड़े। अचेतावस्था में एक का प्राण दूसरे के शरीर में, दूसरे के प्राण पहले के शरीर में परिवर्तित हो जाएँ तो उसे मात्र संयोग ही नहीं, वरन् आत्मा का अद्भुत तत्त्वदर्शन और किसी सर्वोपरि बुद्धिमान सत्ता की अनोखी लीला ही कहेंगे।

प्रस्तुत घटना उसका जीता-जागता उदाहरण है। यह घटना सर्वप्रथम सेंटपीटर्स बर्ग की वीकली मेडिकल जनरल में छपी, उसी के आधार पर उसे 'थियोसॉफिकल इन्क्वारीज' ने छापा।

२२ सितंबर सन् १८७४ की बात है। रूस के यूराल पर्वत स्थित नगर ओरनबर्ग का एक धन कुबेर यहूदी बीमार पड़ा। डॉक्टरों ने उसे सन्निपात होना बताया। उसकी नाड़ी लगभग टूट गई, शरीर ठंढा पड़ गया, बत्तियाँ जला दी गईं, अंतिम प्रार्थना की जाने लगी, तभी मरणासन्न यहूदी इब्राहीम चारको के शरीर में फिर से चेतना लौटती दिखाई दी, श्वास गति धीरे-धीरे तीव्र हो उठी, आँखें खुल गईं, उसने अपने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई, लगा अब बिलकुल ठीक हो गया, कुछ गड़बड़ दीख रही थी, इतनी ही कि वह कुछ विस्मित,

आश्चर्यचकित-सा दीख रहा था, मानो इस स्थान के लिए वह निरा अनजान हो।

होश में आने के बाद इब्राहीम चारको ने जो शब्द कहे, उन्हें सुनकर घर वाले थोड़ा चौंके, क्योंकि वह भाषा घर में कोई नहीं समझ पाता। घर वालों ने अपनी भाषा में बात-चीत करनी चाही, पर इब्राहीम चारको ने जो कुछ कहा, उसे घर का एक भी सदस्य नहीं समझ पाया। लोगों ने समझा कि इब्राहीम पागल हो गया। वह इसी तरह दिनभर बड़बड़ाता, शीशे में चेहरा देखता और घर से भागने की चेष्टा करता रहा। पागलों का इलाज करने वाले डॉक्टर परेशान थे कि पागल होने पर मनुष्य चाहे जितना ऊल-जलूल बोले, पर बोलता अपनी भाषा है और अस्त-व्यस्त बोलता है, पर इब्राहीम जो कुछ बोलता है, वह सब एक ही भाषा के शब्द हैं। उसने कागज पर कुछ लिखा। उसे भाषा विशेषज्ञों से पढ़वाया गया तो पता चला कि उसने जो लिखा है वह लैटिन भाषा के क्रमबद्ध शब्द और वाक्य थे, जो निरर्थक नहीं थे। इब्राहीम चारको को लैटिन के एक अक्षर का भी ज्ञान नहीं था, यही हैरानी थी कि वह आधे घंटे के अंतर से लैटिन किस तरह जान गया?

अब उसे सेंटपीटर्सबर्ग की मेडिकल युनिवर्सिटी में ले जाया गया। वहाँ लैटिन भाषा जानने वाले प्रोफेसर आरेलो ने उसका परीक्षण किया। पहली बार इब्राहीम ने खुलकर लैटिन में बात की। उसने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा कि आज मैं खुश हूँ कि कम-से-कम आप मेरी बात तो सुन और समझ सकते हैं। आप यकीन नहीं करेंगे, पर यह है सच। भगवान जाने कैसे हुआ, पर मैं ब्रिटिश कोलंबिया (उत्तरी अमेरिका) का रहने वाला हूँ। न्यूवेस्ट मिनिस्टर में मेरा घर है। मेरी पत्नी भी है और बच्चा भी। मेरा नाम इब्राहीम ही है, पर इब्राहीम चारको नहीं, इब्राहीम उरहम है। प्रोफेसर आरलो ने उस समय तो यही कहा कि यह सब जासूसी षड्यंत्र-सा लगता है। इससे अधिक वे कुछ जान न पाए। इसी बीच इब्राहीम वहाँ से

चुपचाप भाग निकला। फिर बहुत दिनों तक उसका पता न चला। लोगों ने समझा वह किसी नदी-जोहड़ में डूबकर मर गया।

कुछ दिन बाद ब्रिटिश कोलंबिया के अखबारों में एक विचित्र घटना छपी। ठीक उसी दिन जिस दिन रूस का इब्राहीम चारको बीमार पड़ा था, न्यूवेस्ट के एक साधारण परिवार में भी इब्राहीम उरहम नामक अंग्रेज बीमार पड़ा। न्यूवेस्ट मिनिस्टर ग्लोब में ठीक ओरनबर्ग की सीध में पड़ता है। यदि कोई लंबी कील ओरनबर्ग में घुसेड़ी जाए और वह पृथ्वी के आर-पार कर जाए, तो न्यूवेस्ट मिनिस्टर में ही पहुँचेगी। बीमार थोड़ी देर अचेत रहा और जब होश में आया तब यहूदियों जैसी भाषा बोलने लगा। उसने अपने बच्चों तक को पहचानने से इनकार कर दिया। इसी बीच एक दूसरा इब्राहीम न्यूवेस्ट मिनिस्टर आ पहुँचा, उसकी शक्ल सूरत रूसियों जैसी थी, पर वह लैटिन बोलता था और इब्राहीम उरहम की पत्नी को अपनी पत्नी बताता था। उसने बहुत-सी ऐसे बातें बताईं जो केवल वह और उसकी पत्नी ही जानते थे। पत्नी ने वे सारी बातें स्वीकार तो कीं, पर उसने कहा— सब बातें सच होने पर भी शक्ल में तो तुम मेरे पति से भिन्न शरीर के हो।

यह समाचार अखबारों में छपा, तब प्रो० आरलो स्वयं ब्रिटिश कोलंबिया आए और यह देखकर हैरान रह गए कि यह वही व्यक्ति था जिसका उन्होंने पूर्व परीक्षण किया था। आत्मविज्ञान की जानकारी के अभाव में पाश्चात्य वैज्ञानिक भी इस घटना का कुछ अर्थ न निकाल सके। रहस्य, रहस्य ही बना रह गया, किंतु इस घटना की याद करने वाले अमेरिकन आज भी आश्चर्यचकित होकर विचार करते हैं कि क्या सचमुच शरीर से पृथक कोई आत्मचेतना है, जो शरीर के व्यापार में संलग्न होकर भी मुक्त जीवन तत्त्व हो? इस रहस्य का विश्लेषण भारतीय धर्म विज्ञान और तत्त्वदर्शन ही कर सकता है। विविध योग-साधनाओं द्वारा इस सत्य का यथार्थ ज्ञान और अनुभूति को भी मनुष्य प्राप्त कर सकता है।

१५ अप्रेल १८९७ को एक पादरी मोटर दुर्घटनाग्रस्त हो गए। बेहोशी में अस्पताल ले जाए गए। होश आया तो एक छोटे बालक का ही आचरण करने लगे। पिछला नाम, पता, व्यवसाय सब भूल गए। पहले वे यहूदी भाषा नहीं जानते थे। शिशु रूप में अब यहूदी बोलते। परेशान होकर डाक्टरों ने उन्हें लंदन से न्यूयार्क भेजा, वहाँ चिकित्सा चली। धीरे-धीरे सुधार हुआ। लंबे समय तक कभी बालक व्यक्तित्व मुखर रहता, कभी पादरी-व्यक्तित्व। अरसे बाद अंततः वे असली व्यक्तित्व में लौट सके।

मृतात्माएँ दूसरों के शरीर पर किस स्थिति में, किन पर और किसलिए आधिपत्य स्थापित करती हैं इसका सही उत्तर दे सकना तो आज की स्थिति में कठिन है, पर अनुमान यह लगाया जा सकता है कि कोई मनस्वी आत्मा अपने से दुर्बल पड़ने वाले व्यक्तियों पर छा जाने में अधिक सफल होता है। पूर्व परिचय एवं स्नेह-सौहार्द्र भी एक कारण हो सकता है। अतृप्त आत्माएँ सांसारिक जीवन का आनंद लेना चाहती हैं अथवा अपनी अभिलाषाएँ पूरी करने के लिए आतुर होती हैं। यह इंद्रिय क्षमता से युक्त स्थूल शरीर से ही संभव है। सूक्ष्म शरीरधारी मानसिक अनुभूतियाँ तो ले सकता है, पर स्थूल इंद्रियों के अभाव से भौतिक वस्तुओं का उपभोग उसके लिए शक्य नहीं होता। अस्तु, इस प्रयोजन के लिए वे दूसरों के शरीरों पर आधिपत्य जमाते हैं और अपना मनोरथ पूरा करते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कारण भी हो सकते हैं।

यह आधिपत्य थोड़े समय के लिए आवेग, उन्माद स्तर का भी हो सकता है और उसका एक रूप यह भी संभव है कि शरीर का असली स्वामी जीवात्मा मूर्च्छित अवस्था में जा पड़े और उस शरीर का उपयोग कोई अधिकार जमाने वाली सत्ता मनचाहे ढंग से करती रहे।

योग-साधना द्वारा भी साधक-सिद्धगण परकाया प्रवेश की सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। एक सिद्ध पुरुष के आँखों देखे

गए परकाया प्रवेश का विवरण कमांडर एल० के० फैरेल ने लिखा है। घटना सन् १९३९ की है। एक दिन पश्चिमी कमान के सैनिक कमाडेंट श्री एल० पी० फैरेल अपने सहायक अधिकारियों के साथ एक युद्ध संबंधी योजना तैयार कर रहे थे। यह स्थान जहाँ पर उनका कैंप लगा हुआ था, आसाम-वर्मा की सीमा पर था। वहीं पास में एक नदी बहती थी। नदी के पास ही यह मंत्रणा चल रही थी।

एकाएक कुछ अधिकारियों का ध्यान नदी की ओर चला गया। श्री फैरेल ने भी उधर देखा तो उनकी भी दृष्टि अटककर रह गई। टेलिस्कोप उठाकर देखा कि एक महा जीर्ण-शीर्ण शरीर का वृद्ध संन्यासी पानी में घुसा एक शव को बाहर खींच रहा है। कमजोर शरीर होने से शव ढोने में अड़चन हो रही थी। हाँफता जाता था और खींचता भी। बड़ी कठिनाई से शव किनारे पर आ पाया।

श्री एल० पी० फैरेल यद्यपि अंग्रेज थे, पर अपनी बाल्यावस्था से ही आध्यात्मिक विषयों में रुचि उन्होंने प्रगाढ़ कर ली थी। भारतवर्ष में एक उच्च सैनिक अफसर नियुक्त होने के बाद तो उनके जीवन में एक नया मोड़ आया। भारतीय तत्त्वदर्शन का उन्होंने गहरा अध्ययन ही नहीं किया, जिसकी भी जानकारी मिली, वह सिद्ध महात्माओं के पास जा-जाकर अपनी जिज्ञासाओं का समाधान भी करते रहे। धीरे-धीरे उनका परलोक, पुनर्जन्म, कर्मफल और आत्मा की अमरता पर विश्वास हो चला था। यह घटना तो उनके जीवन में अप्रत्याशित ही थी और उसने उनके उक्त विश्वास को निष्ठा में बदल दिया। श्री फैरेल एक अंग्रेज ऑफीसर के रूप में भारत आए थे, पर जब वे यहाँ से लौटे तब उनकी आत्मा में शुद्ध हिंदू संस्कार स्थान ले चुके थे।

एक वृद्ध शव क्यों खींच रहा था? इस रहस्य को जानने की जिज्ञासा स्वाभाविक ही थी। योजना तो वहीं रखी रह गई, सब लोग एकटक देखने लगे कि वृद्ध संन्यासी इस शव का क्या करता है?

वृद्ध शव को खींचकर एक वृक्ष की आड़ में ले गया। फिर थोड़ी देर तक सन्नाटा छाया रहा, कुछ पता नहीं चला कि वह क्या कर रहा है? कोई १५-२० मिनट पीछे ही दिखाई दिया कि वह युवक जो अभी शव के रूप में नदी में बहता चला जा रहा था, उन्हीं गीले कपड़ों को पहने बाहर निकल आया और कपड़े उतारने लगा। संभवतः वह उन्हें सुखाना चाहता होगा।

मृत व्यक्ति का एकाएक जीवित हो जाना एक महान आश्चर्यजनक घटना थी और एक बड़ा भारी रहस्य भी, जो श्री फैरेल के मन में कुतूहल भी उत्पन्न कर रहा था और आशंका भी। उन्होंने कुछ सैनिकों को आदेश दिया—सशस्त्र सिपाहियों ने जाकर युवक को घेर लिया और बंदी बनाकर श्री फैरेल के पास ले आए।

युवक के वहाँ से आते ही श्री फैरेल ने प्रश्न किया, "वह वृद्ध कहाँ है?" इस पर युवक हँसा, जैसे इस गिरफ्तारी आदि का उसके मन पर कोई प्रभाव न पड़ा हो और फिर बोला—"वह वृद्ध मैं ही हूँ।"

"लेकिन अभी कुछ देर पहले तो तुम शव थे, पानी में बह रहे थे, एक बुड्ढा तुम्हें पानी में से खींचकर किनारे पर ले गया था, फिर तुम प्रकट हो गए, यह रहस्य क्या है? यदि तुम्हीं वह वृद्ध हो तो उस वृद्ध का शरीर कहाँ है?" आश्चर्यचकित फैरेल ने एक साथ ही इतने प्रश्न पूछ डाले, जिनका यकायक उत्तर देना असंभव-सा था।

युवक ने संतोष के साथ बताया—"हम योगी हैं, हमारा स्थूल शरीर वृद्ध हो गया था, काम नहीं देता था, अभी इस पृथ्वी पर रहने की हमारी आकांक्षा तृप्त नहीं हुई थी। किसी को मारकर बलात् शरीर में प्रवेश करना तो पाप होता, इसलिए बहुत दिन से इस प्रतीक्षा में था कि कोई अच्छा शव मिले तो उसमें अपना यह पुराना चोला बदल लें। सौभाग्य से वह इच्छा आज पूरी हुई। मैं ही वह वृद्ध हूँ, यह शरीर उस युवक का था, अब मेरा है।"

इस पर फैरेल ने प्रश्न किया—"तब फिर तुम्हारा पहला शरीर कहाँ है ?"

संकेत से उस युवक शरीर में प्रवेशधारी संन्यासी ने बताया—"वह अब उस पेड़ के पीछे मृत अवस्था में पड़ा है। अपना प्राण शरीर खींचकर उसे इस शरीर में धारण कर लेने के बाद उसकी कोई उपयोगिता नहीं रही। थोड़ी देर में उसका अग्नि संस्कार कर देते, पर अभी तो इस शरीर के कपड़े भी नहीं सुखा पाए थे कि आपके इन सैनिकों ने हमें बंदी बना लिया।"

श्री फैरेल ने इसके बाद उस संन्यासी से बहुत सारी बातें हिंदू दर्शन के बारे में पूछीं और बहुत प्रभावित हुए। वह यह भी जानना चाहते थे कि स्थूलशरीर के अणु-अणु में व्याप्त प्रकाश शरीर के अणुओं को किस प्रकार समेटा जा सकता है, किस प्रकार शरीर से बाहर निकाला और दूसरे शरीर में अथवा मुक्त आकाश में रखा जा सकता है ? पर वह सब कष्टसाध्य योग-साधनाओं से पूरी होने वाली योजनाएँ थीं। उनके लिए श्री फैरेल के पास न तो पर्याप्त साहस ही था और न ही समय, पर उन्होंने यह अवश्य स्वीकार कर लिया कि सूक्ष्म अंतःचेतना से संबंधित भारतीय तत्त्वदर्शन कोई गप या कल्पना मात्र नहीं, वह वैज्ञानिक तथ्य है, जिनकी ओर आज यूरोपीय वैज्ञानिक बढ़ रहे हैं।

कोश (सैल) स्थित नाभिक (न्यूक्लियस) में, जिसमें जीवित चेतना के सूक्ष्मतम संस्कार माला के मनकों की तरह पिरोये हैं, स्वतंत्र कोश में शरीर निर्माण की क्षमता है, अमीबा के अध्ययन से यह स्पष्ट प्रकट हो गया है। पर वैज्ञानिक अभी यह स्वीकार नहीं करते कि न्यूक्लियस स्वतंत्र अवस्था में भी रह सकता है। उस सिद्धांत की पुष्टि भारतीय दर्शन का यह परकाया प्रवेश सिद्धांत करेगा। भूत-प्रेत की कल्पना को भले ही लोग एकाएक स्वीकार न करें, पर श्री फैरेल के उक्त संस्मरण को धोखा नहीं कहा जा सकता। वे एक जिम्मेदार व्यक्ति थे और यह घटना

उन्होंने स्वयं ही १७ मई १९५९ के साप्ताहिक हिंदुस्तान में उद्धृत की थी।

हार्वर्ड विश्वविद्यालय अमेरिका के डॉक्टर आसवन ने अपनी मनोवैज्ञानिक खोजों में कई सच्ची घटनाओं का उल्लेख दिया है, जो किसी व्यक्ति में किसी अन्य आत्मा का प्रवेश हो जाना संभव बताती हैं। उन्होंने एक कारीगर का उदाहरण प्रस्तुत किया है। एक दिन अनायास ही वह अपने औजार फेंककर चिल्लाया कि मैं यहाँ कैसे आ गया और यह बेकार काम कैसे करने लगा? सही यह है कि दो वर्षों से उसने अपना असली घर छोड़ दिया था। किसी आत्मा के प्रभाव में आकर ही उसने घर छोड़ा और वह काम करने लगा जिसका उसे अभ्यास नहीं था। जब तक वह उस आत्मा के प्रभाव में रहा, तब तक वह अपना नाम व असली घर भूला हुआ था।

## सम्मोहन और परकाया प्रवेश

सम्मोहन विद्या एक प्रकार से परकाया प्रवेश का ही दूसरा रूप है। प्रयोक्ता अपने प्रचंड मनोबल का प्रहार करता है और जिस पर प्रयोग किया गया है, उसके बाह्य मस्तिष्क की चेतना को पीछे अंतर्मन में धकेल देता है। यह अर्द्ध मूर्च्छित स्थिति हुई। सोचने-समझने वाला मस्तिष्क निद्राग्रस्त हो गया और उसकी जगह प्रयोक्ता का मनोबल काम करने लगा। सारे मस्तिष्कीय तंत्रों का उपयोग तब तक वही करता है, जब तक कि बलात निद्रा से मुक्ति नहीं मिल जाती। प्रयोक्ता का प्रहार और उपभोक्ता ही सहज स्वीकृति का समन्वय ही सम्मोहन की स्थिति उत्पन्न करता है। दोनों में से एक पक्ष भी दुर्बल हो तो प्रयोग सफल न हो सकेगा।

स्व-सम्मोहन का स्तर अधिक ऊँचा है उसमें प्रबल आत्मशक्ति के द्वारा ही अपने चेतन मस्तिष्क को अर्द्ध तंद्रा में धकेल दिया जाता है और अचेतन को सामान्य जीवन संचार की व्यवस्था जुटाते रहने के लिए सीमित कर दिया जाता है। इसे योग निद्रा या समाधि कहते हैं। इसमें अहर्निश श्रम संलग्न रहने वाले बाह्य मस्तिष्क को कृत्रिम

शक्ति साथ ही दिव्य निद्रा का आनंद मिलता है। इस विश्रांति के उपरांत एक नई स्फूर्ति का लाभ मिलता है। साथ ही चेतना की आवश्यक परतों को दुर्बल एवं आवश्यक परतों को सबल बनाने का अवसर मिलता है। योगी लोग आत्मोत्कर्ष के अन्यान्य उच्चस्तरीय लाभ भी इस योग निद्रा द्वारा प्राप्त करते हैं। सामान्यत: प्रचलित स्व-सम्मोहन भी अपना मनोबल बढ़ाने, बुरी आदतें छुड़ाने एवं उपयोगी निष्ठाएँ जमाने के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो रहा है।

स्व-सम्मोहन कठिन है। आत्मबल को प्रखर बनाने के उपरांत ही उसमें इतनी क्षमता उत्पन्न होती है कि जाग्रत मस्तिष्क को शिथिल बना सके और उस स्थिति का लाभ लेकर अनावयक को हटाने एवं आवश्यक को जमाने का कार्य पूरा कर सके। आमतौर से जाग्रत मस्तिष्क ही सबल होता है और वह अपनी सर्वोपरि सत्ता को चुनौती दिया जाना स्वीकार नहीं करता। तर्क और संदेह के आधार पर वह अपने ऊपर होने वाले आक्रमण को पूरी शक्ति के साथ रोकता है। फलत: स्व-सम्मोहन की गहराई उत्पन्न होने से भारी कठिनाई उत्पन्न होती है। इतने पर भी शांत चित्त से, श्रद्धापूर्वक किन्हीं विचारों को बार-बार दोहराने से भी कुछ तो प्रभाव पड़ता ही है और उपयोगी मानसिक परिवर्तन के लिए प्रयासों से कुछ तो सफलताएँ मिलती ही हैं। यह कुछ-कुछ भी बूँद-बूँद करके घड़ा भरने की उक्ति के अनुरूप लाभदायक ही सिद्ध होता है।

''कान्सश ओटोसजेशन'' ग्रंथ में फ्रांस के मनोविज्ञान विशारद प्रो. इमाइल कू ने अनेक उदाहरण प्रस्तुत करते हुए बताया है कि किस प्रकार इच्छाशक्ति का प्रयोग करके अपने आप में तथा दूसरों में असाधारण परिवर्तन किया जा सकता है। ये प्रयोग शारीरिक और मानसिक रुग्णता को दूर करने में भी बहुत प्रभावशाली सिद्ध हुए हैं।

स्व-सम्मोहन आत्मसाधना है, सम्मोहन वैज्ञानिक प्रयोग। मानसिक चिकित्सा जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य एक व्यक्ति द्वारा दूसरे को अर्द्ध मूर्च्छित करने की प्रक्रिया द्वारा ही संपन्न होता है। इस प्रकार

उत्पन्न हुई योगनिद्रा इतनी गहरी होती है कि उसमें छोटे-बड़े ऑपरेशन भी आसानी से हो सकते हैं। पाश्चात्य देशों में यह विज्ञान अब बहुत आगे तक बढ़ गया है और दंत चिकित्सक तो आमतौर से इस प्रक्रिया का उपयोग करके बिना सुन्न किए ही दाँत उखाड़ते रहते हैं और रोगी को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता।

हिप्नोटिज्म का हिंदी अनुवाद 'सम्मोहन' है। उसे सामान्यतः एक विशेष प्रकार की सुझाई हुई नींद को 'नर्वस निद्रा' कहा जा सकता है। साधारण नींद में मनुष्य सुधि-बुधि खोकर अचेत हो जाता है, पर सम्मोहन निद्रा में मनुष्य का आधा सचेतन मस्तिष्क भर सोता है। उसके स्थान पर अचेतन अधिक सक्षम हो जाता है और आदेशकर्त्ता के निर्देशों के प्रति पूर्ण सजगता का परिचय देता है। इसे चेतना की सामान्य स्थिति का असामान्य प्रत्यावर्तन कहा जा सकता है। सक्रिय मस्तिष्क की सुषुप्ति और निष्क्रिय की जागृति इसे कहा जाए तो भी बात नहीं बनती। क्योंकि सक्रिय की निंदा वाली बात तो सही है, पर जिसे निष्क्रिय कहा जा रहा है, वह अपने क्षेत्र में सक्रिय से भी अधिक सक्रिय रहता है और व्यक्तित्व के निर्माण में ज्ञानवान चेतना से भी कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी भूमिका का निर्वाह करता है।

डॉक्टर वार्बर की तरह अन्य लोगों को भी यह संदेह था कि सम्मोहन प्रदर्शनों में कोई पट्ट शिष्य बाजीगर को सफल सिद्ध करने के लिए जान-बूझकर ढोंग बनाता है, किंतु आशंका क्रमशः निर्मूल होती चली गई है। जब तक बाजीगरी के कौतुक प्रदर्शनों का सम्मोहन विद्या का प्रयोग होता था, तब तक उस पर उँगली उठने को काफी गुंजाइश थी, पर अब वैसा कदाचित् ही होता है। अब यह विद्या मानसोपचार के क्षेत्र में सम्मिलित हो गई है और प्रायः इसी के लिए उसका उपयोग होता है। मस्तिष्क के तर्कशक्ति, इच्छाशक्ति एवं निष्कर्ष क्षमता के कुछ अपने क्षेत्र हैं। सम्मोहन निद्रा में उसी को निष्क्रिय बना दिया जाता है और सम्मोहित व्यक्ति इस

स्थिति में पहुँच जाता है, मानो उसकी अपनी निजी विचार-बुद्धि का अंत हो गया।

विज्ञानी एरिक्शन ने सम्मोहित व्यक्ति की रंग पहचानने की क्षमता बदल देने, पानी को ही शराब बताकर उसमें नशे के लक्षण उत्पन्न कर देने में सफलता पाई है। इसी प्रकार 'जनरल ऑफ साइकेट्री' में मनःशास्त्री के. 'उलमैन के प्रयोग विवरण' लेख में उन सफलताओं का वर्णन है, जिनमें शरीर के विभिन्न अवयवों पर विभिन्न परिवर्तन संभव कर दिखाए थे। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति का हाथ ठंढे पानी में डलवाया गया और उसे अत्यधिक उष्ण मनवा लेने पर हाथ में छाले उठ आना संभव हो गया था। ऐसे ही अनेक विवरण रूसी मानसोपचारक प्लेटोनोव ने अपनी पुस्तक 'दि वर्ल्ड एज ए फिजियोलोजिकल एण्ड थेराप्यूटिक फैक्टर' में प्रकाशित कराए हैं।

रूसी मनःशास्त्री पावलोव के अनुसार सम्मोहन में जादू जैसी कोई बात नहीं है, वह मनोविज्ञान सम्मत सहज प्रक्रिया है, जिसमें कुछ मस्तिष्कीय कणों की अंतःक्षमता को कृत्रिम रूप से सुला देने और जगा देने की प्रक्रिया को संकल्प शक्ति के आधार पर संपन्न कर दिया जाता है।

सम्मोहन से शरीर की सामान्य स्थिति में भी अंतर आ जाता है। यह अंतर शरीर परीक्षा में सहज ही शरीर को सुन्न करने में सम्मोहन प्रयोग बहुत सफल हुए हैं। प्रथम महायुद्ध के दिनों रूसी डॉक्टर पोडिया पोलेस्की ने ३० घायलों के शरीर बिना क्लोरोफार्म के ही सुन्न करके दिखाए थे और उनके पीड़ा रहित आपरेशन संपन्न किए थे। ब्रिटिश डॉक्टर एस्टल ने इस प्रयोग के आधार पर लगभग २०० आपरेशन संपन्न किए थे। यूरोप के अनेक देशों में दंत चिकित्सक बिना कष्ट दाँत उखाड़ने में इस पद्धति का प्रयोग करते हैं। दंत ही में नहीं, प्रसव के लिए भी प्रसूतिग्रहों में यह प्रक्रिया बहुत उपयोगी सिद्ध हो रही है। अमेरिका की मेडीकल ऐसोशिएसन ने चिकित्सा

विज्ञान की एक प्रामाणिक पद्धति के रूप में सम्मोहन को सन् १९५८ ई० से ही मान्यता दे रखी है। इसी प्रकार ब्रिटिश एण्ड अमेरिकन मेडीकल ऐसोसिएशन ने भी उसे उपयोगी चिकित्सा विधि के रूप में प्रामाणिकता प्रदान की है।

सम्मोहन किसी समय जादुई करिश्मा समझा जाता था और उसके समर्थकों तथा विरोधियों के पक्ष में अपनी-अपनी बातें इतने जोर-शोर से कहते थे कि जन साधारण के लिए उस संबंध में कोई स्पष्ट अभिमत बना सकना संभव न हो पाता था, पर ऐसी बात नहीं है। उसे विज्ञान की एक तथ्यपूर्ण धारा के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। अब सम्मोहन को कला नहीं विज्ञान के रूप में प्रतिपादित किया जाता है। इसे आश्चर्यजनक प्रदर्शनों के रूप में नहीं, मनुष्य के लिए उपयोगी सत्परिणाम प्रस्तुत कर सकने वाली विद्या के रूप में प्रस्तुत किया जाता, देखा जा सकता है। जैसे हृदय की गति ८२ से बढ़कर १४६ तक हो जाना, रक्त का दबाव १०५ से उठकर १३६ तक जा पहुँचना, तापमान ९९ सेंटीग्रेट से १०१ तक देखा जाना। इतना होने पर भी रक्त में जिन तत्त्वों का समावेश है, उनके अनुपात में अंतर नहीं आता। लवण, शक्कर आदि की जो मात्रा शरीर में विद्यमान थी, उसका परिमाण नहीं बदला जा सका, इसी प्रकार बीमारियों के कारण होने वाले कष्ट की अनुभूति तो उतने समय के लिए रुक सकती है और रोगी अपने को अच्छा अनुभव कर सकता है। इतने पर भी उस बीमारी की जड़ कट जाना संभव नहीं होता। हाँ, सुधार का धीमा सिलसिला चल पड़ सकता है।

पूर्वनिर्धारित मान्यताओं को बदलने के प्रयोग यदि करने ही हों तो उनमें बहुत समय लगेगा और सफलता बहुत धीरे-धीरे मिलेगी। लड़ाइयों में पकड़े गए शत्रु पक्ष के सैनिकों को पहले की अपेक्षा भिन्न मत का बनाने के लिए सम्मोहन विज्ञान के आधार पर प्रयोग होते रहे हैं। उन्हें ब्रेन वाशिंग कहा जाता रहा है। इनसे आंशिक सफलता ही मिली है, क्योंकि यह उनकी परिपक्व देश·भक्ति की

मूल धारा को बदल देने के लिए किए गए अति कठिन कार्य थे। इनकी तुलना में किसी अनाचारी व्यक्ति का अनाचार छुड़ा देना सरल पड़ता है, क्योंकि उस अनाचार की आदत होते हुए भी अंतःकरण में उसके लिए विरोधी भावना पहले से ही बनी हुई थी।

सम्मोहित व्यक्ति में उसके विनिर्मित व्यक्तित्व की सीमा के अंतर्गत ही कार्य कराए जा सकते हैं। अचेतन की गहरी परतें अपने भीतर कुछ नैतिक और आत्मिक मान्यताएँ अत्यंत सघन होकर जमाए रहती हैं। उन्हें सम्मोहित प्रयोगों में नहीं छुआ जाता। सामान्य कामकाजी बातों को ही शरीर और मस्तिष्क द्वारा पूरा कराया जा सकता है। किसी व्यक्ति की आंतरिक आस्था जीव दया पर आधारित है। उसे सम्मोहित स्थिति में मांस खाने के लिए कहा जाए तो मन की गहरी परतें उसका विरोध करेंगी और वह व्यक्ति उस आदेश का पालन करने से इनकार कर देगा। इसी प्रकार किसी का धन या शील हरण करने, किसी की हत्या करने जैसे कुकृत्यों के लिए सम्मोहन कर्त्ता कोई प्रयोग करे तो अंतःकरण की अस्वीकृति होने पर वे प्रयोग सफल न हो सकेंगे। इसी प्रकार यह भी संभव नहीं कि किसी व्यक्ति की मूलभूत क्षमता से बाहर के काम कराए जा सकें। हिंदी पढ़े व्यक्ति से अंग्रेजी बोलने के लिए कहा जाए तो वह न बोल सकेगा। इसी प्रकार इतना वजन उठाने के लिए कहा जाए जो उसकी शारीरिक क्षमता से बाहर हो तो भी यह इन प्रयोगों में न बन पड़ेगा। आत्महत्या कर लेने जैसे आदेश भी सम्मोहित व्यक्ति को स्वीकार्य नहीं होते। इसका तात्पर्य इतना ही है कि प्रदर्शनों में इतनी ही सफलता मिलेगी, जितनी कि किसी अनुशासित व्यक्ति से जीवित अवस्था में सहमत करके कराया जा सकता है। प्रकारांतर से इन्हें कामकाजी सहमति से लादी हुई सफलता भर कह सकते हैं।

सत्संग और कुसंग का प्रभाव सर्वविदित है। ऋषियों के आश्रमों में सिंह और गाय एक घाट में पानी पीते थे। यह उस आत्मचेतना का ही प्रभाव था, जो प्रचंड होने के कारण अपने क्षेत्र में एक प्रकार से

सम्मोहन का वातावरण उत्पन्न किए रहती थी। नारद जी के थोड़े-से संपर्क से ही प्रह्लाद, ध्रुव, पार्वती, वाल्मीकि आदि अनेकों को दिशा मिली और जीवनक्रम उलट गए। भगवान बुद्ध के संपर्क में आने वाले अंगुलिमाल, अंबपाली जैसे अगणित अधम जन उच्चस्तर पर पहुँच गए। गाँधी जी के प्रभाव से अगणित व्यक्ति त्याग और बलिदान के क्षेत्र में उतरे और बढ़े-चढ़े आदर्श उपस्थित करते रहे। इसे प्राणतत्त्व की प्रखरता का सुविस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ आलोक ही कह सकते हैं। परकाया प्रवेश एवं सम्मोहन विज्ञान के अनुसार भी इस प्रभाव-प्रक्रिया की व्याख्या की जा सकती है।

परकाया प्रवेश उच्चस्तरीय अध्यात्म विज्ञान की परिधि में आने वाली महत्त्वपूर्ण विधि-व्यवस्था है। इसका उपभोग सदुद्देश्य के लिए सज्जनता संपन्न आत्माओं द्वारा सद्भावनापूर्वक किया जा सके तो उसका दुर्भाव उसी प्रकार श्रेयस्कर होगा, जैसा कि चिकित्सा विज्ञान आदि के द्वारा संभव होता है।

# असामान्य और विलक्षण किंतु संभव-सुलभ

उस समय की बात है, जब सिकंदर पंजाब की सीमा पर आ पहुँचा था। एक दिन, रात को उसने अपने पहरेदारों को बुलाया और पूछा—"यह गाने की आवाज कहाँ से आ रही है?" पहरेदारों ने बहुत ध्यान लगाकर सुनने की कोशिश की, पर उन्हें तो झींगुर की भी आवाज सुनाई न दी। भौंचक्के पहरेदार एक-दूसरे का मुँह देखने लगे, बोले—"महाराज! हमें तो कहीं से भी गाने की आवाज सुनाई नहीं दे रही है।"

दूसरे दिन सिकंदर को फिर वही ध्वनि सुनाई दी, उसने अपने सेनापति को बुलाकर कहा—"देखो जी, किसी के गाने की आवाज सुनकर मेरी नींद टूट जाती है। पता तो लगाना, यह रात को कौन गाता है?" सेनापति ने भी बहुतेरा ध्यान से सुनने का प्रयत्न किया, किंतु उसे भी कहीं से कोई आवाज सुनाई नहीं दी। मन में तो आया कि कह दे, आपको भ्रम हो रहा है, पर सिकंदर का भय क्या कम था, धीरे से बोला—"महाराज! बहुत प्रयत्न करने पर भी कुछ सुनाई नहीं पड़ रहा, लेकिन अभी सैनिकों को आपकी बताई दिशा में भेजता हूँ। अभी पता लगाकर आते हैं कि कौन गा रहा है?"

चुस्त घुड़सवार दौड़ाए गए। जिस दिशा से सिकंदर ने आवाज का आना बताया था। घुड़सवार सैनिक उधर ही बढ़ते गए। बहुत पास जाने पर उन्हें एक ग्रामीण के गाने का स्वर सुनाई दिया। पता चला कि वह स्थान सिकंदर के राज प्रासाद से दस मील दूर है।

इतनी दूर की आवाज सिकंदर ने कैसे सुन ली ? सैनिक एवं सेनापति सभी इस बात के लिए स्तब्ध थे। ग्रामीण एक निर्जन स्थान की झोंपड़ी पर से गाता था और आवाज इतना लंबा मार्ग तय करके सिकंदर तक पहुँच जाती थी। प्रश्न है कि सिकंदर इतनी दूर की आवाज कैसे सुन लेता था ? दूसरे लोग क्यों नहीं सुन पाते थे ? सेनापति ने स्वीकार किया कि सचमुच ही अपनी ज्ञानेंद्रियों को संतुष्ट करके, केवल वही सत्य नहीं कही जा सकती है। अतींद्रिय सत्य भी संसार में है, उन्हें पहचाने बिना मनुष्य जीवन की कोई उपयोगिता नहीं।

दूर की आवाज सुनना विज्ञान के वर्तमान युग में कोई बड़े आश्चर्य की बात नहीं है। 'रेडियो डिटेक्शन एण्ड रेंजिंग' अर्थात 'राडार' नाम जिन लोगों ने सुना है, वे यह जानते होंगे कि यह एक ऐसा यंत्र है, जो सैकड़ों मील दूर से आ रही आवाज ही नहीं, वस्तु की तसवीर का भी पता दे देता है। हवाई जहाज उड़ते हैं, तब उनके आवश्यक निर्देश, संवाद और मौसम आदि की जानकारियाँ राडार के द्वारा ही भेजी जाती हैं और उनके संदेश राडार द्वारा ही प्राप्त होते हैं। बादल छाए हैं, कोहरा घना हो रहा है, हवाई पट्टी पर धुआँ छाया है। राडार की आँख उसे भी देख सकती है और जहाज को रास्ता बताकर उसे कुशलतापूर्वक हवाई अड्डे पर उतारा जा सकता है। छोटे राडार १५० मील तक की आवाज सुन सकते हैं। जापान ने ५०० मील तक की आवाज सुन सकने वाले राडार बनाए हैं। अमेरिका के पास तो ऐसे भी राडार हैं, जो 'ह्यूस्टन' के चंद्र वैज्ञानिकों को चंद्रमा में उतरे हुए यात्रियों तक से बात-चीत करा देते हैं। राडार यंत्र की इस क्षमता पर और उसकी खोज व निर्माण करने वाले वैज्ञानिकों के बुद्धि-कौशल पर जितना ही आश्चर्य किया जाए कम है।

किसी विज्ञान जानने वाले विद्यार्थी से यह बात कही जाए तो वह हँसकर कहेगा, भाईसाहब! इसमें आश्चर्य की क्या बात है ?

साधारण-सा रेडियो तरंगों का सिद्धांत है। जब ध्वनि लहरियाँ किसी माध्यम से टकराती हैं तो वे फिर वापस लौट जाती हैं और उस स्थान, वस्तु आदि का पता दे देती हैं। हवाई जहाज की ध्वनि को रेडियो तरंगों द्वारा पकड़कर यह पता लगा लिया जाता है कि वे किस दिशा में, कितनी दूरी पर हैं। यह कार्य प्रकाश की गति अर्थात् १८६००० मील प्रति सेकंड की गति से होता है। रेडियो तरंगों की भी यही गति होती है। तात्पर्य यह है कि यदि उपयुक्त संवेदनशीलता वाला राडार जैसा कोई यंत्र हो तो बड़ी से भी बड़ी दूरी की आवाज को सेकंडों में सुना जा सकता है, देखा जा सकता है। प्रकाश से भी तीव्रगामी तत्त्वों की खोज ने तो अब इस संभावना को और भी बढ़ा दिया है और अब सारे ब्रह्मांड को भी कान लगाकर सुने जाने की बात को भी कोई बड़ा आश्चर्य नहीं माना जाता।

मुश्किल इतनी ही है कि कोई भी यंत्र इतने संवेदनशील नहीं बन पाते कि दशों दिशाओं से आने वाली करोड़ों आवाजों में से किसी भी पतली-से-पतली आवाज को जान सकें और भयंकर से भयंकर निनाद में भी टूटने-फूटने के भय से बची रहें। राडार इतना उपयोगी है, पर भरकम भी इतना कि उसे एक स्थान पर स्थापित करने में वर्षों लग जाते हैं। सैकड़ों फुट ऊँचे एंटीना, ट्रांस्मीटर, रिसीवर, बहुत अधिक कंपन वाली (सुपर फ्रीक्वेंसी) रेडियो ऊर्जा, इंडीकेटर, आक्सीलेटर, माडुलेटर, सिंक्रोवाइजर आदि अनेक यंत्र प्रणालियाँ मिलकर एक राडार काम करने योग्य हो पाता है। उस पर भी अनेक कर्मचारी काम करते हैं, लाखों रुपयों का खरच आता है, तब कहीं वह काम करने के योग्य हो पाता है। कहीं बिजली का बहुत तेज धमाका हो जाए तो राडार बेकार भी हो जाते हैं और जहाज यदि ऐसे हों, जो अपनी ध्वनि को बाहर फैलने ही न दें, तो राडार उनको पहचान भी नहीं सकें। यह सब देखकर इतने भारी मानवीय बुद्धि-कौशल तुच्छ और नगण्य ही दिखाई देते हैं।

दूसरी तरफ एक दूसरा राडार मनुष्य का छोटा-सा कान, एक सर्वशक्तिमान कलाकार विधाता की याद दिलाता है, जिसकी बराबरी का राडार संभवतः मनुष्य कभी भी बना न पाए। कान हलकी-से-हलकी आवाज को भी सुन और भयंकर घोष को भी बरदाश्त कर सकते हैं। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि कानों की मदद से मनुष्य लगभग ५ लाख आवाजें सुनकर पहचान सकता है जबकि राडार का उपयोग अभी तक सीमित ही है।

कान के भीतरी भाग जो संदेशों को मस्तिष्क में पहुँचाने का काम करता है में ३०५०० रोयें पाए जाते हैं। ये रोयें जिस श्रवण झिल्ली से जुड़े होते हैं, वह तो १।२५०००००००००००००००० इंच से भी छोटा अर्थात इलेक्ट्रो माइक्रोस्कोप से भी मुश्किल से दिखाई दे सकने वाला होता है। वैज्ञानिकों का भी अनुमान है कि इतने सूक्ष्म व संवेदनशील यंत्र को बनाने में मनुष्य जाति एक बार पूरी तरह सभ्य होकर नष्ट हो जाने के बाद फिर नए सिरे से जन्म लेकर विज्ञान की दिशा में प्रगति करे तो ही हो सकती है (अर्थात् मानवीय क्षमता से परे की बात है।) इस झिल्ली का यदि पूर्ण उपयोग संभव हो सके तो संचार की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म हलचलों को, लाखों मील दूर की आवाज को भी ऐसे सुना जा सकता है मानो वह यहीं-कहीं अपने पास ही हो या पास बैठे मित्र से ही बात-चीत हो रही हो। महर्षि पतंजलि ने लिखा है :—

**श्रोत्राकाशयोः सम्बन्धः संयमाद्दिव्यं श्रोत्रम्।**

अर्थात श्रवणेंद्रिय (कान) तथा आकाश के संबंध पर संयम करने से दिव्य ध्वनियों को सुनने की शक्ति प्राप्त होती है।

न केवल दूरवर्ती ध्वनियों को सुनने की, दिव्य श्रवण की सिद्धियाँ संभव हैं, वरन योग विद्या के द्वारा और भी कितनी ही चमत्कारिक लगने वाली क्षमताएँ प्राप्त की जा सकती हैं। इस तरह के अनेकानेक उदाहरण मिलते भी हैं।

## निग्रहीत मन की अपार शक्ति सामर्थ्य

श्री रामकृष्ण परमहंस दक्षिणेश्वर में थे। एक दिन अनेक भक्तों के बीच उनका प्रवचन चल रहा था। तभी एक व्यक्ति उनके दर्शनों के लिए आया। रामकृष्ण परमहंस उसे ऐसे डॉटने लगे, जैसे उसे वर्षों से जानते हों। कहने लगे—"तू अपनी धर्मपत्नी को पीटकर आया है। जा पहले अपनी पत्नी से क्षमा माँग, फिर यहाँ सत्संग में आना।"

उस व्यक्ति ने अपनी भूल स्वीकार की और क्षमा माँगने लौट गया। उपस्थित लोग आश्चर्यचकित रह गए कि रामकृष्ण परमहंस ने बिना पूछे कैसे जान लिया कि उस व्यक्ति ने अपनी स्त्री को पीटा। वे अपना आश्चर्य रोक न सके, तब परमहंस ने बताया—"मन की सामर्थ्य बहुत अधिक है। वह सेकंड के भी हजारवें हिस्से में कहीं भी जाकर सब कुछ गुप्त रूप से देख-सुन आता है, यदि हम उसे अपने वश में किए हों।"

गुरु गोरखनाथ से एक कापालिक बहुत चिढ़ा हुआ था। एक दिन आमना-सामना हो गया। कापालिक के हाथ में कुल्हाड़ी थी, उसे ही लेकर वह तेजी से गोरखनाथ को मारने दौड़ा। पर अभी कुल दस कदम ही चला था कि वह जैसे का तैसा ही खड़ा रह गया। कुल्हाड़ी वाला हाथ ऊपर और दूसरा पेट में लगाकर हाय-हाय चिल्लाने लगा। वह इस स्थिति में भी नहीं था कि हिल-डुल सके।

शिष्यों ने गोरखनाथ से पूछा—"महाराज! यह कैसे हो गया?" तो उन्होंने बताया—"निग्रहीत मन बेताल की तरह शक्तिशाली और आज्ञाकारी होता है। यह तो क्या, ऐसे सैकड़ों कापालिकों को मारण क्रिया के द्वारा एक क्षण में मार गिराया जा सकता है।"

ब्रह्मचारी व्यासदेव ने आत्मविज्ञान पुस्तक की भूमिका में बताया है कि उन्हें इस विज्ञान का लाभ कैसे हुआ? उस प्रस्तावना में उन्होंने एक घटना दी है, जो मन की ऐसी ही शक्ति का परिचय देती

है। वह लिखते हैं—"मैं उन साधु के पास गया। मुझे क्षुधा सता रही थी।" मैंने कहा—"भगवन्! कुछ खाने को हो तो दो, भूख के कारण व्याकुलता बढ़ रही है।" साधु ने पूछा—"क्या खाएगा? आज तू जो भी वस्तु चाहेगा, हम तुझे खिलाएँगे।" मुझे उस समय देहली की चाँदनी चौक की जलेबियों की याद आ गई। मैंने वही इच्छा प्रकट कर दी। साधु गुफा के अंदर गए और एक बरतन में कुछ ढँककर ले आए। मैंने देखा कि बिलकुल गर्म जलेबियाँ, स्वाद और बनावट बिलकुल वैसी ही जैसी देहली में थीं। मैंने पूछा—"भगवन्! ये जलेबियाँ यहाँ कैसे आईं?" तो उन्होंने हँसकर कहा—"योगाभ्यास से वश में किए हुए मन में वह शक्ति आ जाती है कि आकाश में भरी हुई शक्ति का उपयोग एक क्षण में कर लें और भारी-से-भारी पदार्थ को उलट-फेर कर दें।"

सन् १९०२ ई० में बंगाल के एक साधु अगस्तिया ने हठयोग की एक प्रतिज्ञा की। प्रतिज्ञा यह थी कि वह लगातार दस वर्ष तक अपना बायाँ हाथ उठाए ही रहेगा, कभी नीचे नहीं गिराएगा और सचमुच ही वह लगातार दस वर्षों तक बिना हिलाए हाथ ऊँचा किए रहे। इस बीच एक चिड़िया ने समझा वह किसी पेड़ की टहनी है, सो उसने बड़े मजे के साथ योगी के उठाए हुए हाथ की हथेली पर घोंसला बना लिया और उस पर अंडे भी दे दिए। हाथ की हड्डियाँ सीधी मजबूत हो गईं, मुड़ना बंद हो गया और इस तरह हाथ बेकार हो गया, किंतु योगी का कहना था कि इससे उसे कोई कष्ट नहीं हुआ। योग की ऐसी साधनाओं के पीछे कोई दर्शन नहीं है। यदि कुछ है तो इतना ही कि तितिक्षापूर्ण अभ्यास के द्वारा मनुष्य चाहे तो अपने शरीर की सामान्य क्रियाओं को असामान्य बना सकता है।

शरीर में नन्हीं-सी सुई चुभ जाती है तो बड़ा कष्ट होता है किंतु सिंगापुर के एक भारतीय योगी ने जिसका उल्लेख 'ए वण्डर बुक ऑफ स्ट्रेंज फैक्ट्स' में भी है, उसने अपने शरीर में नक्की ५० भाले आर-पार घुसेड़ लिए और इस अवस्था में भी वह सबसे हँस-

हँसकर बातचीत करता रहा। लोगों ने कहा, यदि आपको कष्ट नहीं हो रहा हो तो थोड़ा चलकर दिखाइए। इस पर योगी ने ३ मील चलकर दिखा दिया। उन्होंने बताया कि कष्ट दरअसल शरीर को होता है, आत्मा को नहीं। यदि मनुष्य अपने आपको आत्मा में स्थित कर ले, तो जिन्हें सामान्य लोग यातनाएँ कहते हैं, वह कष्ट भी साधारण खेल जैसे लगने लगते हैं।

इसका एक उदाहरण विंध्याचल के योगी गणेश गिरि ने प्रस्तुत किया। उन्होंनें एक बार अपने होठों के आगे ठोढ़ी वाले समतल मैदानी हिस्से में थोड़ी गीली मिट्टी रखकर उसमें सरसों बो दी। जब तक सरसों उग कर बड़ी नहीं हुई और उनकी जड़ों ने खाल चीरकर अपना स्थान मजबूत नहीं कर लिया, तब तक वे धूप में चित्त लेटे रहे।

'साहिब अल्लाहशाह' नामक लाहौर का एक मुसलमान फकीर ६०० पौंड से भी अधिक वजन की मोटी लोहे की साँकलें पहने रहता था। वृद्ध हो जाने पर भी अपने अभ्यास के कारण इतना वजन भार नहीं बना। पंजाब में वह 'साँकलवाला' और जिंगलिंग के नाम से आज भी याद किया जाता है। उनकी मृत्यु के बाद साँकलों की तौल की गई तो वह ६७० पौंड निकलीं।

श्रीराव नामक योगी के संबंध में देश-विदेश में अनेक चमत्कारिक वर्णन प्रचलित हैं। दहकते अंगारों पर चलना, नाइट्रिक एसिड खा लेना, काँच की कीलें खा जाना उनके लिए सामान्य बात थीं। वे जल पर चलने के भी कई प्रदर्शन कर चुके थे।

श्रीवल्लभदास विन्नानी नामक एक व्यक्ति ने एक बार ऐसे चमत्कारों की खोज के उद्देश्य से विंध्याचल की यात्रा की। यात्रा के दौरान उन्हें जो अनुभव हुए उनका विवरण देते हुए विन्नानी जी लिखते हैं—"मैंने एक योगी महात्मा के दर्शन किए। वह पानी में नंगे पाँव चलने की दिव्य क्षमता रखते थे। वह हवा में भी उड़ते थे। मैंने उनको पानी में प्रत्यक्ष चलते हुए देखा और फोटो भी उतारी।"

यह कहने पर कि योगी जी आप इस तरह की सिद्धियों का सार्वजनिक प्रदर्शन क्यों नहीं करते तो उन्होंने भृतहरि का निर्देश सुनाते हुए बताया कि चमत्कारों का प्रदर्शन अहंकार बढ़ाता है और योगी को पथ भ्रष्ट करता है। सिद्धियाँ आत्मकल्याण के लिए हैं न कि प्रदर्शन के लिए? तो भी अनेक सिद्ध-महात्माओं द्वारा ऐसे चमत्कार यदा-कदा देखने को मिल ही जाते हैं।

लुम्का में जबरदस्त बाढ़ आई हुई थी। सारा नगर कुछ ही क्षणों में जलमग्न हो जाने वाला था। इंजीनियरों की सारी शक्ति निष्क्रिय हो गई, सब पाताल समाधि की प्रतीक्षा कर रहे थे। उसी समय कुछ व्यक्तियों ने फ्रीडियन नामक साधु से जाकर प्रार्थना की—"महात्मन्! इस दैवी प्रकोप से बचाव का कुछ उपाय आप ही कीजिए। कहते हैं, महात्मा फ्रीडियन ने ओसर नदी की धारा योगबल से मोड़ दी और नगर को डूबने से बचा लिया।"

एग्निस नाम की एक ईसाई महिला हुई हैं। उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश भाग योगाभ्यास में लगाया। उनके आश्रम में २० और साधिकाएँ भी रहती थीं। एक बार उन्हें तीन दिन तक कुछ भी खाने को न मिला। एक साधिका भूख से अति व्याकुल होकर बोली—"मैडम! हमें रोटी दो, नहीं तो हम मर जाएँगी।" एग्निस ने कहा—"अच्छा, बगल वाले कमरे में रोटियाँ रखीं हैं, उठा लाओ।" उस विहार में अन्न का एक दाना भी नहीं था, पर उन्होंने इतने विश्वासपूर्वक कहा जैसे वह स्वयं पकाकर रोटियाँ रख आई हैं। साधिका वहाँ गई तो सचमुच एक पात्र में रोटियाँ थीं। उन्हें खाकर सबने भूख मिटाई।

स्वामी ब्रह्मानंद का एक भाषण काशी में हुआ। उसमें कई रूढ़िवादी उनसे बहुत रुष्ट हो गए। एक दिन स्वामी जी गंगा तट पर बैठे ध्यान कर रहे थे, तभी उधर कुछ विरोधी आ पहुँचे। उन्होंने बदला निकालने का यह अच्छा अवसर समझा। इसलिए दो हृष्ट-पुष्ट युवक आगे आए और पद्मासन में बैठे स्वामी

जी को जबरदस्ती उठाकर पानी में फेंक दिया। स्वामी जी उन दोनों युवकों को भी हाथ में कसे लेते चले गए, पर जब वे डूबने लगे तो उन्हें छोड़ दिया और आपने स्वयं नदी की सतह पर पद्मासन समाधि ले ली। बाहर मुसलमान बड़ी देर तक हाथों में पत्थर लिए खड़े रहे कि स्वामी जी बाहर निकलें तो उन पर पत्थर दे मारें, पर वह स्थिति आई नहीं। स्वामी जी शाम तक जल के अंदर ही बैठे रहे। जब वे वहाँ से चले गए तो वे शांत भाव से बाहर निकल आए।

योग विज्ञान की दृष्टि से शारीरिक शक्ति में इस तरह की वृद्धि का उद्‌गम मस्तिष्क है। विशेष परिस्थितियों में मस्तिष्क मांस-पेशियों को उद्‌भट कार्य करने का आदेश देता है और उसमें से कुछ सूक्ष्मतत्त्व निकलकर अपना प्रभाव दिखाते हैं। वैज्ञानिकों ने हाल में ऐसी विधियाँ खोजी हैं, जिनसे कृत्रिम रूप से शारीरिक शक्ति बढ़ाई जा सकती है।

मस्तिष्क के आदेशों को बीच में रोक लिया जाता है और मानव शरीर को एक विशेष प्रकार का ट्रांजिस्टर बनाकर उन आदेशों की शक्ति बढ़ा दी जाती है। इससे मनुष्य अति मानवीय शक्ति संपन्न हो जाता है। शरीरस्थ जीवाणुओं को प्राण और संकल्प शक्ति के द्वारा हलका और भारी करके, सम्मोहन क्रिया द्वारा थोड़ी ही देर में बहुत भारी प्राण की मात्रा खींच करके ऐसे असामान्य कार्य दिखलाए जा सकते हैं, जिन्हें चमत्कार कहा जा सकता है।

इन सिद्धियों, सामर्थ्यों को पाकर मनुष्य उन स्थितियों में भी आनंदपूर्वक रह सकता है, जिनमें साधारण लोग जाकर जीवित नहीं रह सकते।

अष्ट सिद्धियाँ—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व और वाशित्व को प्राप्त कर मनुष्य इसी देह में ईश्वरतुल्य शक्ति का अनुभव कर सकता है और संसार में होने वाले घटनाचक्रों को परास्त कर सकता है, विस्फोट कर सकता है, शाप,

वरदान, प्राण-संचार या संदेश प्रसारण कर दूसरों का भला भी कर सकता है और लोगों के जीवन दिशाएँ भी मोड़ सकता है।

श्री श्यामाचरण जी लाहिड़ी एक बार हिमालय की यात्रा पर गए। वहाँ एक युवा संन्यासी से उनकी भेंट हुई। साधु उन्हें एक गुफा में ले गया और एकांत में ले जाकर सिर पर हाथ रखा। श्री लाहिड़ी जी लिखते हैं—"मुझे ऐसा लगा कि यह हाथ नहीं कोई प्रचंड विद्युत शक्ति वाला दंड था। उससे मेरे शरीर में प्रकाश भरना प्रारंभ हुआ। मुझे पूर्व जीवन की स्मृतियाँ उभरने लगीं। यहाँ तक कि मैंने अनेक वस्तुएँ ऐसी भी पहचानीं, जिनका मेरे पिछले जन्मों से संबंध था, मैं अनुभव करता हूँ कि गुरुओं का प्राणवान योग्य शिष्य इसी तरह पाकर स्वल्पकाल में ही दीर्घ प्राणवान बनते होंगे।"

यह तो भारतवर्ष के हठयोगियों की बातें हैं। अन्य देशों में भी अभ्यास द्वारा अर्जित शक्ति ऐसी विचित्रताएँ देखने को मिल जाती हैं, जो इस बात की प्रतीक हैं कि मनुष्य कुछ विशेष परिस्थितियों में पैदा अवश्य किया गया है, किंतु यदि वह चाहे तो अपने आपको बिलकुल बदल सकता है।

इन्का जाति के राजा अटाहुल्लापा ने अपने कानों में वजनदार छल्ले डालकर उन्हें १५ इंच तक बढ़ा लिया था। सारा शरीर सामान्य मनुष्य का होते हुए भी कान हाथी के-से लगते थे।

सिख सम्राट सरदार रणजीतसिंह के दरबार में प्रसिद्ध भारतीय योगी संत हरदास ने जनरल वेंटूरा के सम्मुख अपनी जीभ को निकालकर माथे का वह हिस्सा छूकर दिखा दिया, जो दोनों भौंहों के बीच होता है। संत हरदास बता रहे थे कि जीभ को मोड़कर गरदन के भीतर जहाँ चिड़िया होती है, उस छिद्र को बंद कर लेने से योगी मस्तिष्क में अमृत पान करता है। ऐसा योगी अपनी मृत्यु को जीत लेता है। अंग्रेजों का कहना था कि जीभ द्वारा ऐसा हो ही नहीं सकता। इस पर संत हरदास ने अपनी जीभ को आगे निकालकर

दिखा दिया। उन्होंने बताया कि कुछ औषधियों द्वारा जीभ को सूँतकर इस योग्य बनाया जाता है।

सरसजिंगा—अफ्रीका के हबशियों में अपने होठ बढ़ाने की प्रथा है। इसके लिए वे लकड़ी की तश्तरियाँ बनाकर उनसे होठों को बाँध देते हैं। होठ जितने बढ़ते जाते हैं, बड़ी तश्तरियाँ बाँध दी जाती हैं और इस प्रकार कई स्त्रियाँ तो अपने होठ १४-१५ इंच अर्थात सवा फुट व्यास की ढक्कनदार तश्तरी की तरह बढ़ा लेती हैं।

फिजी द्वीप के निवासी एक त्योहार मनाते हैं। उस दिन उन्हें आग पर चलना पड़ता है। इसे अभ्यास भी कहा जा सकता है और आत्मविश्वास की शक्ति भी, कि वे लोग दहकते आग के शोलों में घंटों नाचते रहते हैं, किंतु कभी ऐसा कोई अवसर नहीं आता कि उनके पैर जल जाते हों।

आयरन ड्यूक ऑफ वेलिंग्टन कंसास राज्य अमेरिका के जान डब्ल्यू हार्टन ने पेट में न जाने कहाँ की आग पैदा कर ली थी कि नाश्ते में ४० पौंड तरबूजा खा लेने के बाद भी सोड़ा की बोतलें, टूटे शीशे, अंडों के छिलके और केले के अनगिनत छिलके चबा जाते थे। एक बार एक इंजीनियर द्वारा चुनौती दिए जाने पर उन्होंने भरपूर भोजन करने के बाद पूरी एक बोरी सीमेंट खा लिया और उसे इस स्वाद के साथ एक-एक चम्मच भक्षण किया जैसे छोटे बच्चे प्रेमपूर्वक शक्कर या मिठाई खाते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि मैं कुछ और अभ्यास करूँ तो इतनी ही मात्रा में विष तक खाकर दिखा सकता हूँ।

भारतीय योगी चांगदेव की योग-गाथाएँ सारे भारतवासी जानते हैं। एक-एक कर चौदह बार उन्होंने अपनी मृत्यु को वापस लौटाया। उनकी आयु १४०० वर्ष की हो गई थी। ईसा मसीह के समय से लेकर १२वीं शताब्दी—संत ज्ञानेश्वर के समय तक उनकी गाथाओं के उल्लेख मिलते हैं। वह शेर की सवारी किया करते थे और शेर को हाँकने के लिए जहरीले साँप की चाबुक लिए रहते थे। एक बार

उनको हवा में स्थिर रहने की चुनौती दी गई, तब महाराष्ट्र के एक गाँव में उन्होंने हजारों लोगों के सम्मुख भाषण देने का प्रस्ताव किया। एक-एक कर २४ चौकियाँ रखी गईं। सबसे ऊपरी चौकी पर बैठकर उन्होंने प्रवचन प्रारंभ किया। पीछे उनके पूर्व आदेशानुसार शिष्यों ने एक-एक कर सभी चौकियाँ हटा लीं। चांगदेव वैसे ही हवा में स्थिर प्रवचन करते रहे। लोगों ने उनकी जय-जयकार की, तो वे बोले—भाइयो! इसमें मेरा कुछ बड़प्पन नहीं है। योग क्रियाओं के अभ्यास द्वारा मनुष्य चाहे तो पक्षियों की तरह हवा में उड़ सकता है, सितारों की तरह हवा में अधर लटककर संसार का दृश्य देखता रह सकता है।

मानव शरीर की क्षमताएँ अब तक हुई जानकारी से हजारों गुनी अधिक हैं। भयानक सर्प या कुत्ते से बचने के लिए कई व्यक्ति जो कभी एक फुट भी नहीं उछल सकते थे, भयावेश में तीन-तीन मीटर ऊँची दीवार कूद जाते हैं। जेल से भागते हुए कैदी लोहे की सलाखें मोड़ सकते हैं, यह सब क्रियाएँ यह बताती हैं कि मनुष्य शरीर की सामर्थ्य बहुत अधिक है। शरीर में कुछ तत्त्व और सूक्ष्म एवं अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान हैं, उनमें भरी हुई हिमनदियों को जाग्रत कर मनुष्य भीम की तरह बलवान, नागार्जुन की तरह रसायनज्ञ, संजय की तरह दिव्य दृष्टि संपन्न, अर्जुन की तरह लोक-लोकांतर में आने-जाने की क्षमता वाला, रामकृष्ण की तरह परमहंस और गुरु गोरखनाथ की तरह चमत्कारिक सिद्धियाँ पा सकता है।

अतींद्रिय क्षमता विकसित करने का एक क्रमबद्ध विज्ञान है—योग। आज तो हर क्षेत्र में नकली-ही-नकली की भरमार है। नकली योग भी इतना बढ़ गया है कि उस घटाटोप में से असली को ढूँढ़ निकालना कठिन पड़ रहा है। तो भी तथ्य अपने स्थान पर यथावत अडिग है। यदि अंतःचेतना पर पड़े हुए कषाय-कल्मषों को प्रयत्नपूर्वक धो डाला जाए तो आत्मसत्ता की प्रखरता जग पड़ेगी

और उसके साथ-साथ-ही अतींद्रिय परोक्षानुभूतियाँ होने लगेंगी। अप्रत्यक्ष भी प्रत्यक्षवत परिलक्षित होने लगेगा।

प्रयत्नपूर्वक आत्मबल को बढ़ाना और सिद्धयों के क्षेत्र में प्रवेश करना यह एक तर्क और विज्ञानसम्मत प्रक्रिया है, किंतु कभी-कभी ऐसा भी देखने को मिलता है कि कितने ही व्यक्तियों में इस प्रकार की विशेषताएँ अनायास ही प्रकट हो जाती हैं। उन्होंने कुछ भी साधन या प्रयत्न नहीं किया तो भी उनमें ऐसी क्षमताएँ उभरीं, जो अन्य व्यक्तियों में नहीं पाई जातीं। असामान्य को ही चमत्कार कहते हैं। अस्तु, ऐसे व्यक्तियों को चमत्कारी माना गया। होता यह है कि किन्हीं व्यक्तियों के पास पूर्वसंचित ऐसे संस्कार होते हैं, जो परिस्थितिवश अनायास ही उभर जाते हैं। वर्षा के दिनों में अनायास ही कितने पौधे उपज पड़ते हैं, वस्तुतः उनके बीज जमीन में पहले से ही दबे होते हैं। यही बात उन व्यक्तियों के बारे में कही जा सकती है, जो बिना किसी प्रकार की अध्यात्म साधनाएँ किए ही अपनी अलौकिक क्षमताओं का परिचय देते हैं।

# चाहे जो बन जाएँ, इतनी भर ही छूट है

मानवी-सत्ता, असुरता और देवत्व दोनों से मिलकर बनी है। परमात्मा ने यह छूट केवल मनुष्य को ही दी है कि वह चाहे तो दिव्य दैवी प्रवृत्तियाँ अपनाए अथवा आसुरी पाशविक वृत्ति अपनाकर नर-पशु से नर-पिशाच बन जाए। यह चयन-सुविधा मनुष्य के विवेक की परीक्षा के लिए ही मिली है। वह कौन-सी प्रवृत्ति अपनाता है, यह उसकी मनमरजी की बात है। परंतु जिस किसी भी वृत्ति को वह अपनाता है, उनका पुरस्कार या दंड निश्चित रूप से मिलता है।

मनुष्य की प्रकृति में दोनों तत्त्व विद्यमान हैं। जिस पक्ष को समर्थन, अवसर और पोषण मिलता है, वही पक्ष सुदृढ़ होता जाता है। सद्‌गुण, सद्‌भाव और सद्‌विचारों की दिव्य भावनाओं का अभ्यास मनुष्य को देवता बना देता है और इनकी पुष्टि होती जाती है तो व्यक्ति नर से नारायण बनता जाता है। इसके विपरीत यदि वह दुष्ट संगति, दुराचरण, आसुरी क्रिया-कलाप और पाप प्रवृत्तियों को अपनाता है तो धीरे-धीरे निकृष्ट से निकृष्टतम बनता चला जाता है। पशु से भी बढ़कर पिशाच का रूप धारण करता है और जघन्य कर्म करके ही उसके भीतर बैठा असुर मोद मनाता है। ऐसे कुकृत्य जिन्हें सुनकर ही एक सहृदय व्यक्ति काँप उठे, वह उन नृशंस कृत्यों को अपने अहंकार की पूर्ति समझने लगता है।

१९३० ई० में ट्रांसलवानियाँ के पहाड़ी प्रदेशों के राज्य सिंहासन पर आरूढ़ होने वाला काउंट ड्राक्युला ऐसा ही नर-पिशाच था।

उसने १४७६ तक राज्य किया। ४६ वर्षों के इस शासन काल में उसने ऐसी-ऐसी अमानवीय क्रूरताएँ बरतीं कि उसे इतिहासकारों ने 'लाद दि इंपेलर' अर्थात आदमी के शरीर को छेदने वाला कहा। जिस किसी भी व्यक्ति पर वह अप्रसन्न हो जाता उसे सजा देने के लिए वह क्रूरतम तरीका अपनाता था। वह लोगों को लकड़ी के बड़े-बड़े आदमकद खूँटों पर कीलों से ठोकवा देता और उनकी पीड़ा तथा तड़प को देखकर प्रसन्न होता था।

यह उसका मनोरंजन भी था। वह प्रायः अपने महल में प्रीतिभोज दिया करता था। भोज की मेज के चारों ओर काठ की बनी सूलियों पर जीवित मनुष्यों के शरीर कीलों से टँगे होते थे। लोग यातना और पीड़ा से चीखते-चिल्लाते रहते ओर उन्हें देखकर ड्राक्युला बड़ा आनंद-विभोर होता हुआ भोजन करता रहता। सड़ती लाशों और बासी खून की सड़ाँध भरी बदबू में ड्राक्युला को जैसे महक-सी आती थी।

दरबार में भी वह इसी प्रकार सूलियों पर जीवित लोगों को कीलों से ठुकवा देता तथा शासन प्रबंध के विभिन्न पहलुओं पर विचार करता रहता। दरबारी बड़े सहमे और डरे रहते थे, क्योंकि इससे जरा भी विरोध या अरुचि दरशाने का अर्थ था उनकी भी वही दशा। एक बार किसी नए दरबारी ने ड्राक्युला से कह दिया—"इन लाशों से बहुत बदबू आती है।" उसने ड्राक्युला को यह कार्य कहीं एकांत में करने की सलाह दी, ताकि दरबार में आने वालों को दुर्गंध का सामना न करना पड़े । ड्राक्युला ने इस सुझाव को सुनकर जोरों से अट्टहास किया और बड़ा उल्लास व्यक्त करते हुए उसने तुरंत आदेश दिया कि इस आदमी को भी एक खूँटे पर ठोक दिया जाए। वह दरबारी घबराकर माफी माँगने लगा। जीवन दान की दया याचना करने लगा तो ड्राक्युला ने इस पर दयाभाव जताते हुए इतना भर किया कि उसका खूँटा कुछ ऊँचा गढ़वाया और उसे ऊँचे खूँटे पर जड़वा दिया। इस दया को जताते हुए उसने कहा था कि

अब तुम्हें कभी भी दूसरों की बदबू नहीं मिलेगी। घबराने की जरूरत नहीं है।

ड्राक्युला ने इस प्रकार क्रूरतापूर्वक नृशंस हत्याएँ करने के नए-नए ढंग ईजाद किए थे। इसमें उसे बड़ा आनंद आता था। हत्याओं के एक ही तरीके से जब वह ऊब जाता तो दूसरे तरीके भी अपनाने लगता। कई बार वह दूध पीते हुए बच्चों को उनकी माताओं के सीने पर ही कील से जड़वा देता। माँ-बाप के सामने ही उनके अबोध और प्यारे बच्चों को मारकर उन्हें अपने बच्चों का मांस खाने के लिए मजबूर कर देता। एक बार उसने अपने राज्य के सभी गरीब, बूढ़े और बीमार लोगों को सेना द्वारा इकट्ठा कराया तथा उन्हें जिंदा जलवा दिया।

ड्राक्युला के नाम और आतंक का इतना दबदबा था कि उसकी चर्चा आज भी ट्रांसलवानियाँ में होती है तो लोग मारे दहशत के चर्चा वहीं बंद करने का आग्रह करने लगते हैं। इतिहासकारों ने ड्राक्युला को अब तक के विश्व का सर्वाधिक क्रूर, नृशंस और अत्याचारी शासक माना है।

१६२० से १६६६ तक लिपजिंग (जर्मनी) के सेशन कोर्ट में न्यायाधीश रहा बेनेडिक्ट कार्पजे बड़ी कठोर और क्रूर प्रकृति का था। लोग उसे भी ड्राक्युला का अवतार मानते हैं। जो भी हो, परंतु उसका जीवन ड्राक्युला से अद्भुत समानता रखता था। ड्राक्युला ने ४६ वर्ष तक शासन किया, कार्पजे भी ४६ वर्ष तक न्यायाधीश रहा। उसने इस काल में १० हजार पुरुषों और २२ हजार स्त्रियों को फाँसी पर चढ़ाया। छोटे-से-छोटे अपराध, जुआ, चोरी और उठाईगीरी तक में वह मृत्यु दंड देता था, जैसे मृत्यु दंड से नीची सजा कोई हो ही नहीं। स्त्रियों को तो उसने जादू-टोने के संदेह तक में पकड़वा कर फाँसी पर चढ़ा दिया।

कार्पजे ने औसतन प्रतिदिन पाँच व्यक्तियों को फाँसी पर चढ़वाया और फाँसी देखने के लिए वह स्वयं वध-स्थल पर पहुँचता। फाँसी

लगने का दृश्य देखने में उसे बहुत रस आता था। इसके साथ ही वह यह व्यवस्था भी देखता कि मृतकों का मांस खाने के लिए शिकारी कुत्ते तथा दूसरे जानवर यथासमय पहुँचे हैं अथवा नहीं। दया या क्षमा शब्द तो जैसे कार्पजे ने कहीं सीखा ही नहीं था, फिर भी वह अपने आप को धार्मिक कहता था।

निष्ठुर नृशंसता के ये दो इतिहास प्रसिद्ध उदाहरण हैं, जिनमें केवल आदमी को मरते हुए देखने का आनंद लिया जाता रहा। व्यक्तिगत जीवन में भी यह नृशंसता समय-समय पर घुलती रहती है और सामाजिक जीवन में भी विष घोलती रहती है, लेकिन एक बात तय है कि जो व्यक्ति इस प्रकार की अमानवीय क्रूरता को छोटे या बड़े किसी भी रूप में अपनाते हैं, वे जीवन में कभी भी चैन से नहीं बैठ पाते।

इस शताब्दी में नृशंस सामूहिक हत्याओं के लिए हिटलर का नाम बड़ी घृणा और तिरस्कार के साथ लिया जाता है। उसने लाखों निरपराध व्यक्तियों को मरवाया। परंतु वह जीवन भर चैन से नहीं बैठ सका, यहाँ तक कि अपनी छाया से, अपने पदचाप की प्रतिध्वनि तक से डरता रहा। कहते हैं कि वह इतना सशंकित रहता था कि रात में चार-पाँच घंटे की नींद लेते समय भी तीन-चार बार उठ बैठता और अपने सिरहाने रखी रिवाल्वर तथा अन्य सुरक्षा प्रबंधों की जाँच करके देखता।

ऐसे व्यक्ति मरने के बाद भी उसी प्रकृति के बने रहते हैं। अशांत, व्यथित और आत्मप्रताड़ना से आंदोलित उनका जीवन नारकीय बन जाता है। बजाय अपनी गलतियों को सुधारने के वे मरने के बाद भी प्रेत-पिशाच बनकर लोगों को अपने दुष्ट आचरण द्वारा सताते रहते हैं।

इटली के तानाशाह मुसोलिनी के संबंध में विख्यात है कि वह मरने के बाद प्रेत बनकर अपने खजाने की रखवाली करता रहा है। युद्ध में हारने के बाद वह अपनी जान बचाकर स्विट्जरलैंड की

तरफ भागा था। अरबों रुपयों की संपत्ति, सोने की छड़ें, हीरे, जवाहरात, पौंड, पेंस और डालरों के रूप में उसके पास जमा थी, लेकिन वह भागने में सफल नहीं हुआ और कम्युनिस्ट सेनाओं द्वारा गोली से उड़ा दिया गया।

मरने के बाद प्रेत-पिशाच पर क्या बीतती होगी, यह तो कहा नहीं जा सकता, परंतु व्यक्ति के अपने नृशंस, क्रूर कर्म उसे स्वयं तड़पा-तड़पाकर मारते हैं। ट्रांसलवानिया के शासक काउंट ड्राक्युला ने अपने जीवनकाल में जिस प्रकार लोगों की नृशंस हत्याएँ कीं उससे भी भयंकर तरीके से उसे मारा गया। तुर्की सेनाओं ने जब ट्रांसलवानिया को जीतकर ड्राक्युला को बंदी बना लिया तो उसके शरीर से रोज मांस का एक टुकड़ा काट लिया जाता और वही उसे कच्चा चबाने के लिए मजबूर किया जाता।

जर्मनी के नृशंस-क्रूर न्यायाधीश कार्पजे को कुछ ऐसे लोगों ने पकड़ लिया, जिनके संबंधियों को निरपराध होते हुए भी उसने सजा दी थी और फाँसी पर चढ़वाया था। उन लोगों ने कार्पजे को एक ऐसे कमरे में छोड़ दिया, जहाँ हजारों बिच्छू पहले से ही रख दिए गए थे। कोई तीन दिन में उसकी मृत्यु हुई। उस कोठरी में से कार्पजे की आवाज आना बंद हुई तब लोगों ने उसे बाहर निकाला। उसके शरीर पर ऐसा कोई स्थान नहीं बचा था, जहाँ बिच्छुओं ने दंश नहीं किया हो।

यह तो हुआ बाहरी दंड-व्यवस्था का प्रतिशोधपरक वृत्तांत। इनसे बचा भी जा सकता है, परंतु परमात्मा ने एक ऐसा न्यायाधीश इसी शरीर में बैठा दिया है जो व्यक्ति के कर्मों को देखता रहता है और यथासमय दंडित भी करता है। कहते हैं कि मृत्यु के समय अपने जीवन भर के कर्मों की याद आती है और वे स्मृतियाँ व्यक्ति को दग्ध करने लगती हैं। कई बार ऐसा भी होता है कि पराभव के समय व्यक्ति को अपने सारे क्रूर कर्म याद आते हैं और वह अपने ही कर्मों के प्रेत से डरकर अपने आप का उत्पीड़न करने लगता है।

सन् १९१८-१९ की घटना है। रूस में कम्युनिस्ट क्रांति हो चुकी थी। जारशाही के स्तंभ एक-एक कर ढहते जा रहे थे और लोग जो निरीह गरीब तबके का निर्ममता के साथ शोषण करते रहे थे, एक-एक कर भाग रहे थे, अपने बचाव के लिए। ऐसे ही भागने वाले व्यक्तियों में एक था करेलिया प्रदेश का जागीरदार इवान। वह अपनी पत्नी अन्ना, बेटी काल्या और पुत्र कोल्या के साथ करेलिया के बीहड़ प्रदेश में नदी के तट पर भागते हुए किसी सुरक्षित स्थान की तलाश कर रहे थे।

सेंट पीटर्सबर्ग से कुछ मील दूर ग्रेनाइट पत्थरों से बनी एक कॉटिज में उन्होंने शरण ली। उन लोगों के साथ उनका एक पुराना सेवक बूढ़ा मल्लाह भी था। इवान ने अपनी वासना-पूर्ति के लिए सैकड़ों महिलाओं के साथ अनाचार किया था, उनमे से कइयों ने तो आत्महत्या कर ली थी, अनेक अबोध बालिकाएँ इस क्रूर कर्म को सहन न कर पाने के कारण मर गईं। यही हाल अन्ना का था, अपने चरित्र पर परदा पड़ा रहे इसलिए उसने अपने बाप और भाई तक को मरवा डाला था।

इसके अलावा भी जागीरदार ने हजारों निरपराध व्यक्तियों को मरवा डाला था। उस कॉटिज में दोनों को अपने अतीत की याद आने लगी। संयोग की बात यह है कि जिस कॉटिज में उन्होंने शरण ली। वह कॉटिज कभी इवान का विलास महल रह चुका था। वहाँ का एक-एक पत्थर इवान के क्रूर कर्मों का साक्षी था। ये क्रूर कर्म इतने वीभत्स और भयावह रूप में याद आ रहे थे कि वे सब लोग जिन्हें उसने सताया था, प्रेत बनकर उससे बदला लेने के लिए उतारू लगने लगे। इस स्थिति में इवान ने अपनी पत्नी, बच्चों को बूढ़े मल्लाह के साथ रवाना कर दिया। रास्ते में अन्ना इतनी विक्षिप्त हो उठी कि अपने कपड़े फाड़ने लगी, बाल नोंचने लगी और नदी पार करते समय नाव में से कूद पड़ी।

इवान का भी यही हाल हुआ। उसने भी आत्मप्रताड़ना या अतीत में किए गए क्रूर कर्मों की स्मृति से बुरी तरह भयभीत होकर नेवा झील में कूदकर आत्महत्या कर ली। स्मरणीय है कि दोनों पति-पत्नी अपनी क्रूरता के शिकार व्यक्तियों को नदी, झील में ही फेंका करते थे। शासन और सेना से भले ही यह बच गए, परंतु अंतरात्मा में बैठे न्यायाधीश से बचना कहाँ संभव रहा?

तत्त्वविदों का कथन है कि मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र है। वह चाहे तो देवता भी बन सकता है और यदि चाहे तो नर-पिशाच भी, परंतु इसके परिणामों में चुनाव जैसी कोई स्वतंत्रता नहीं है। जिन्होंने भी असुरता पकड़ी और नृशंसता अपनायी उन्हें अंततः उसका दंड भुगतना ही पड़ा। भले ही वे तत्काल अपने अहंकार को संतुष्ट कर सके, पर परिणाम में उससे भी भयंकर यातना तथा अंत में इनको यंत्रणादायक स्मृतियों के अलावा और कुछ नहीं मिल पाया है।

## आत्मचेतना का उपयोग

प्राचीनकाल में प्रकृति-परमात्मा की इसी नियम व्यवस्था का लाभ उठाकर ऋषि-महर्षियों ने आत्मसत्ता की सामर्थ्य का लाभ उठाया था। आज भी उसके प्रमाण यदा-कदा देखने को मिल जाते हैं। एक समय था, जब आधुनिक विज्ञान और आत्मविद्या कभी भी न मिल सकने वाले दो परस्पर विरोधी बिंदु माने जाते थे। इसी कारण विज्ञान की प्रगति के साथ आध्यात्मिक अवमानना हुई, किंतु आधुनिक विज्ञान भी बढ़ते-बढ़ते एक ऐसी स्थिति में आ गया है, जब उसे यह विचार करना आवश्यक हो गया है कि क्या शरीर ही आत्मा है या आत्मा की अभिव्यक्ति के लिए शरीर अपर्याप्त माध्यम नहीं? मनुष्य की मस्तिष्कीय चेतना की भौतिक परिधि और उसकी विराट अवस्था दोनों के व्यापक अध्ययन से धीरे-धीरे यह बात स्पष्ट होती जा रही है कि सारे शरीर में मस्तिष्क के विद्यमान होने की तरह विराट चेतना संपूर्ण सृष्टि में व्याप्त है। शरीर उसका एक स्टेशन और मंदिर मात्र है, जिसमें वह अपने अंश या जीव रूप में

कुछ क्षण विश्राम के लिए आता है। उसका अंतिम लक्ष्य विभु या विराट बनना है। इस उद्देश्य की पूर्ति न होने तक संतोष नहीं होता।

मनुष्य की चिंतन शक्ति, भावनाओं, संवेदनाओं को मात्र रासायनिक संवेदन मानकर मनुष्य जीवन को नितांत भौतिक मानने की भूल थोड़े से वैज्ञानिकों ने की है। अधिकांश ने या तो अत्यंत गूढ़ कहकर निष्कर्ष निकालने का विचार ही त्याग दिया या फिर श्रद्धापूर्वक उनने यही स्वीकार किया कि मानवीय चेतना का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। वह भौतिकीय तत्त्वों का सम्मिलन मात्र नहीं है, अपितु विराट चेतना की ही अंश है। वह शरीर रूप-नाम का पिंड मात्र नहीं, अनादि-अनंत गुण वाला चेतन तत्त्व है। शरीरों का, इंद्रियों का विकास उसकी इच्छानुसार, उसके संकल्प के आधार पर हुआ है।

भौतिक विज्ञान के जो पंडित स्नायु-तंत्र (नाड़ी मंडल) को ही आत्मा मानते और उन्हीं से विचारों को उद्भूत हुआ मानते हैं, उनमें जर्मनी के शरीर विज्ञानी डॉ० कार्ल ह्वाइट तथा डॉ० टेंडाल आदि प्रमुख हैं। अपने सिद्धांत की पुष्टि में उन्होंने अनेक प्रयोग शरीर पर किए। स्नायुं मंडल की विस्तृत खोज की। उन्होंने उस गति की माप की, जो शरीर में किसी अंग पर आघात के बाद उस अंग से भाव संदेश के रूप में मन तक और मन से शरीर के किसी अंग तक पहुँचते हैं। मस्तिष्क-बोध की सूक्ष्मता का भी पता लगाया तथा विद्युत आवेश देकर उन संकेतों को घटाने-बढ़ाने में भी सफलता प्राप्त की। विचारों की उत्पत्ति के बारे में उन्होंने कहा कि यह मस्तिष्क की वैसी ही उपज है, जैसे यकृत की पित्त। हालाँकि अब तक वैज्ञानिक मस्तिष्क के गहन अंधकार में झाँककर जितना जान सके हैं, वह अधिकतम १३ प्रतिशत है। मस्तिष्क के शेष ८७ प्रतिशत भाग की कोई जानकारी नहीं है। इतनी कम जानकारी को पूर्णता की संज्ञा देना वैसे ही अविवेकपूर्ण कहा जाएगा।

फिर कुछ ऐसी घटनाएँ और प्रसंग भी आए दिन आते रहते हैं, जो इस वैज्ञानिक मान्यता के सामने चुनौती बनकर खड़े हो

जाते हैं। वैज्ञानिक उन कारणों की कोई व्याख्या करने में असमर्थ होते हैं। उदाहरणार्थ इटली में गियोवानी गलांती नामक एक ऐसा बालक था, जो रात के अँधेरे में भी पढ़ सकता था। १९२८ में उसे इसी स्वास्थ्य परीक्षा के बाद अमेरिका नहीं जाने दिया गया था। पढ़ते समय मुख्य कार्य मस्तिष्क करता है और कोई भी मस्तिष्क प्रकाश के बिना पढ़ नहीं सकता, फिर इस बालक में यह क्षमता कहाँ से आई?

स्काटलैंड में जेम्स क्रिस्टन नाम के एक बालक ने १२ वर्ष में ही अरबी, ग्रीक, यहूदी तथा फ्लेमिश सहित विश्व की १२ भाषाएँ सीख ली थीं। २० वर्ष तक वह विज्ञान की सभी भाषाओं का पंडित हो गया था। उसके और सामान्य व्यक्ति के आहार और जीवनक्रम में जब कोई विशेष अंतर नहीं था, तब बौद्धिक क्षमता में आकाश-पाताल जैसा अंतर का कारण क्या हो सकता है? फ्रांस में जन्मे लुईस काडेक ४ वर्ष की आयु के थे, तभी अंग्रेजी, फ्रांसीसी, जर्मनी तथा अन्य यूरोपीय भाषाएँ बोल लेते थे। इससे भी बड़ा आश्चर्य यह था कि वह ६ माह की आयु में ही बाइबिल पढ़ लेते थे। ६ वर्ष की आयु तक पहुँचने पर कोई भी प्रोफेसर गणित, इतिहास और भूगोल में इनकी बराबरी नहीं कर पाता था। जो ज्ञान और बौद्धिक क्षमताएँ इतने अधिक अध्ययन और अभ्यास से विकसित हो पाती हैं और वैज्ञानिक मान्यता के अनुसार जिन्हें पदार्थ की परिणति होना चाहिए थी, वह शारीरिक विकास के अभाव में ही इतने विकास तक कैसे जा पहुँची?

ब्लेइस पास्कल ने १२ वर्ष की आयु में ही ध्वनि शास्त्र पर निबंध प्रस्तुत कर सारे फ्रांस को आश्चर्य में डाल दिया था। जीन फिलिप बेरोटियर को १४ वर्ष की आयु में ही डॉक्टर ऑफ फिलासफी की उपाधि मिल गई थी। उनकी स्मरण शक्ति इतनी तीव्र थी कि दिन याद कराने की देर होती थी, उस दिन की व्यक्तिगत, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय घटनाएँ भी टेप की भाँति दोहरा सकते थे। जोनी

नामक आस्ट्रेलियाई बालक को जब तीन वर्ष की आयु में विद्यालय में प्रवेश कराया गया तो वह उसी दिन से ८वीं कक्षा के छात्रों की पुस्तकें पढ़ लेता था। उसे हाईस्कूल में केवल इसलिए प्रवेश नहीं दिया जा सका क्योंकि उस समय उसकी आयु कुल ५ वर्ष थी जबकि निर्धारित आयु १२ वर्ष न्यूनतम थी।

कोई अल्पबुद्धि व्यक्ति यह स्पष्ट समझ सकता है कि यह असामान्य ज्ञान पूर्व जन्मों के संस्कार हो सकते हैं। हमारे मनीषी निरंतर स्वाध्याय की आवश्यकता अनुमोदित करते रहे और यह बताते रहे कि ज्ञान आत्मा की भूख-प्यास की तरह है। उससे उसका विकास होता है। यह बात समझ में आने वाली है कि चेतना का विकास ज्ञान-साधना से ही संभव है, जो अद्‌भुत क्षमता के रूप में हर किसी को मिलती है। बालकों के आहार, वातावरण, पोषण आदि की समान सुविधाएँ होने पर भी बौद्धिक असमानता इन्हीं भारतीय मान्यताओं की समर्थक है।

इटली के डॉ० लोंब्रोसी जिन्होंने एक समय एक प्रतिष्ठापना दी थी कि रचना विज्ञान की दृष्टि से एक पागल और प्रतिभा संपन्न व्यक्तियों में समरूपता होती है। इस बात को भौतिकवादियों ने बहुत अधिक उछाला, किंतु वे यह भूल गए कि देखने में नमक और शक्कर दोनों में समानता दिखाई देने पर भी उनके गुणों में इतना अंतर होता है कि एक के भाव १८ रुपये होते हैं तो दूसरे के ५ रुपये किलो। प्रतिभाशाली व्यक्तियों, आध्यात्मिक, धार्मिक संतों के विचारों में रचनात्मक जागरूकता और मार्गदर्शन की क्षमता होती है। उन्होंने सैकड़ों लोगों के जीवन में शांति, सुरुचि और सुव्यवस्था दी, जबकि पागल के विचार अस्त-व्यस्त होते हैं। उसे लोग दुत्कारते ही हैं, उसकी सुनता कोई नहीं।

लोंब्रोसी के उक्त प्रतिपादन का खंडन अनेक वैज्ञानिकों तथा मनोवैज्ञानिकों ने भी किया है। डॉ० मोर्शले ने उपर्युक्त मत से असहमति व्यक्त की है और लिखा है कि सामान्य मस्तिष्क में

दुनियादारी की प्रवृत्ति तो होती है, किंतु सूक्ष्म चिंतनशक्ति असाधारण लोगों में ही होती है।

मैडम ब्लैवटस्की का कथन है कि मस्तिष्क उस वीणा व वायलिन की तरह है, जिनके तार को जितना अधिक खींचा व कसा जाएगा, ध्वनि कंपन उतने ही सूक्ष्म और मोहक होंगे। असामान्य मस्तिष्क की असामान्य उपलब्धियाँ ऐसी ही हैं। तार कसने में उसके टूटने का भय होता है, इसलिए उसे धीरे-धीरे सावधानी से कसते हैं। मस्तिष्क को जिन साधनों (योग विद्या) से सूक्ष्म तत्त्वग्राही और संवेदनशील बनाया जाता है, उसकी भी यही प्रवृत्ति होती है। एकाएक कठोर अभ्यास-पागल और विक्षिप्त कर भी सकते हैं, इसलिए साधना का क्रम मार्गदर्शकों की देख-रेख में धीरे-धीरे बढ़ाया जाता है। शारीरिक अभ्यास, उपवास आदि से शरीर-शोधन, विचारों में प्रकाश अवधारणा आदि से ही उच्च क्षमताएँ विकसित होती हैं। योगियों पर कोई स्नायविक दबाव नहीं पड़ता, कोई बीमारी नहीं होती। अतएव सूक्ष्म विचारों की महत्ता के साथ-साथ योग-साधनाओं की भी प्रामाणिकता सिद्ध होती है। चिंतन के सूक्ष्मतर होने से ज्ञान चेतना के कोश परस्पर जुड़ते हुए चले जाते हैं और सामान्य मस्तिष्क जो संदेश, प्रेरणाएँ, अनुभूतियाँ नहीं ग्रहण कर पाते, उनके लिए सुलभ हो जाती हैं। सर आलिवर लाज ने भी अपनी बौद्धिक क्षमताएँ इसी आधार पर विकसित की थीं और यह माना था कि हमारी ज्ञान चेतना पदार्थजन्य न होकर विराट चेतना का ही एक अंश और अंग है। जब तक इस बात को नहीं समझते, तब तक हमारे दृष्टिकोण भी भौतिकवादी बने रहते हैं। तब पाप-पुण्य में कोई अंतर ही नहीं रहता, नैतिकता का कोई अर्थ ही नहीं होता। आज जो सर्वत्र पीड़ा और पतन के दृश्य हैं, स्वार्थ-संकीर्णता ने पुण्य-परमार्थ को दबोच रखा है, वह उसी मान्यता का दुष्परिणाम है।

पूर्वी मनोविज्ञान या भारतीय दर्शन के पीछे शोधों की एक लंबी विज्ञानसम्मत शृंखला है, जबकि पश्चिमी मनोविज्ञान अभी ३-४ वर्ष के बालक के समान है, जो सतह पर खड़ा स्नान करता है। उसमें इतनी क्षमता भी नहीं कि गहरे जाकर गोता लगा सके। इसीलिए वह जितने समाधान प्रस्तुत करता है, उतने ही प्रश्न और समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। ऊपर मस्तिष्क की जिन अदम्य क्षमताओं का वर्णन किया गया है, उन्हें कुछ देर के लिए भूल भी जाएँ तो भी जब मस्तिष्क सामान्य नहीं होता, तब भी चेतन क्रियाएँ चलती रहती हैं। न केवल जाग्रत अवस्था में अपितु स्वप्न व सुषुप्ति अवस्था में भी चेतना बनी रहती है, उसका भी समाधान आवश्यक है। डॉ० ड्यूपेल ने अपनी पुस्तकों में ऐसी घटनाओं का वर्णन किया है, जिससे सिद्ध होता है कि समय या अनुभूति के एक सेकंड के करोड़वें भाग में ही महाकाल या अनेक वर्षों में हुए ज्ञान की अनुभूति कैसे संभव हो जाती है ? इसका अर्थ तो स्पष्टतः यही होता है कि कोई एक ऐसी चेतना है, जो विराट है और उसके लघुतम अंश में भी वही संभावनाएँ सन्निहित हैं। अपनी पुस्तक में डॉ० ड्यूप्रेल ने एक व्यक्ति के स्वप्न का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उस व्यक्ति की गरदन का एक उँगली से स्पर्श किया गया। उसकी नींद टूट गई। जब उससे अनुभव के बारे में पूछा गया तो उसने बताया कि उसने स्वप्न देखा कि मैंने किसी की हत्या कर दी, उस व्यक्ति के घर वालों ने पुलिस को रिपोर्ट लिखाई, पुलिस ने पकड़ा, जेल भेजा, मुकदमा चला, वकील की जिरह हुई, मुझे फाँसी की सजा हो गई। नियत समय पर जल्लाद आया, उसने मेरी गरदन पर चाकू रखा और नींद टूट गई।

डॉ० ड्यूप्रेल लिखते हैं कि जिस तरह ज्ञान के अंश में ही विराट काल व्याप्त होने का यह उदाहरण है, उससे भी अधिक आश्यर्चजनक बात है सम्मोहन की अवस्था में (हिप्नोटिज्म) व्यक्ति अचेत हो जाता है, उसे अपनी स्थिति का बोध नहीं रहता, आँखें

देख नहीं सकतीं, कान सुन नहीं सकते, पलकें तीव्र विद्युत प्रकाश में भी सिकुड़ती हैं, त्वचा स्पर्श ज्ञान से शून्य हो जाती है। हृदय की धड़कन बंद-सी हो जाती है, अत्यंत संवेदनशील यंत्रों से ही जीवन का बोध होता है। कार्बन तत्त्व अत्यधिक बढ़ जाने से मस्तिष्क संज्ञा शून्य हो जाना चाहिए था। जड़ता, अगति या मृत्यु हो जानी चाहिए थी, किंतु तब ज्ञान की क्षमताएँ जागृति से भी अनेक गुनी बढ़ जाती हैं अर्थात सम्मोहन की अवस्था में बाल्यावस्था की जो घटनाएँ याद नहीं रहतीं वे भी स्मरणशक्ति में आ जाती हैं। सामान्य स्थिति में कोई पुस्तक का एक पैराग्राफ पढ़े तो तीव्र बुद्धि व्यक्ति ही उसके कुछ शब्द दोहरा सकते हैं, पर सम्मोहित अवस्था में तो यदि भाषा उसकी पढ़ी हुई न हो तो भी अक्षर-ब-अक्षर दोहरा सकता है। जाग्रत अवस्था में आँख की शक्ति सीमित होती है, किंतु उस स्थिति में कमरे में बंद रहकर भी सैकड़ों मील दूर की वस्तुएँ तक दिखाई देती हैं, यह सब कैसे संभव है?

इससे तो यही निष्कर्ष निकलता है कि आत्मचेतना विराट चेतना का ही अंश है, जिसमें असीम ज्ञान की शक्ति, अद्वितीय क्षमताओं की संभावना सन्निहित है। भूत, भविष्य और वर्तमान उसी में अवस्थित है, वह पदार्थ से परे है तथा उसे जानने में ही जीवन की सार्थकता है। योग-साधना, ध्यान-धारणा और साधन अभ्यासों द्वारा इन्हीं शक्ति केंद्रों को जाग्रत किया जाता है तथा दिव्य शक्ति संपन्न हुआ जाता है।

# मनुष्येतर प्राणी भी कम रोचक, रहस्यमय नहीं

कीड़े-मकोड़े हमें अपनी तुलना में दयनीय स्थिति में पड़े हुए दिखाई पड़ते हैं, पर वस्तुस्थिति वैसी नहीं है। हमारी अपनी दुनिया है और कीट-पतंगों की अपनी। हमें अपनी चेतना के अनुरूप जिस दुनिया का ज्ञान एवं अनुभव है, वह हमारे लिए विभिन्न प्रकार की अनुभूतियाँ और परिस्थितियाँ प्रस्तुत करती रहती हैं। हम अपनी दुनिया को जानते और समझते हैं, उसे परिपूर्ण मानते हैं, जो उसमें लाभ-हानि हैं, उन्हें ही सर्वांगीण मानते हैं, पर यह मान्यता मिथ्या है। वस्तुतः भगवान ने हर प्राणी का एक संसार बनाया है, वह उसमें खोया रहता है और अनुभव करता है कि न केवल उसका कार्यक्षेत्र पूर्ण है, वरन उनकी चेतना भी उसके लिए पर्याप्त सुखद है।

कीड़े-मकोड़ों की दुनिया दयनीय नहीं है। उन्हें बेचारे समझना गलत है। अपनी दुनिया में वे अपने ढंग का पूरा-पूरा कौशल दिखाते होंगे और उस स्थिति में संभवतः उतने ही रुष्ट-तुष्ट रहते होंगे जितने कि हम मनुष्य अपने कार्यक्षेत्र में उपलब्ध शरीर और मन के सहारे सुखी-दुखी रहते हैं।

मकड़ी छोटा-सा घिनौना जीव है, पर उसके संबंध में उपलब्ध तथ्य कम मनोरंजक नहीं हैं। ब्रिटिश कीट विज्ञानी जोसेफ आरेल्ड

ने हिसाब लगाया है कि उस देश के चरागाहों में प्रति एकड़ के पीछे २२ लाख मकड़ियाँ रहती हैं। इनकी छोटी-बड़ी ५५० किस्में गिनी जा चुकी हैं। उनका आधा समय शिकार पकड़ने और खाने में लगता है। वे बहुत खातीं और बहुत पचाती हैं। इंग्लैंड की मकड़ियाँ जितने कीड़े खाती हैं, उनका वजन उससे भी अधिक बैठेगा, जितना कि उस देश में मनुष्यों का वजन है।

तपते हुए रेगिस्तान में, हिमाच्छादित पर्वत-शिखरों पर, कोयले की गहरी खदानों में, मरुस्थलों और दलदलों में, अँधेरी गुफाओं में सर्वत्र मकड़ी को अपने सुरक्षित जाले में विराजमान पाया जा सकता है।

मकड़ी का जाला संसार का सबसे मजबूत किस्म का धागा है। अमेरिका में आँखों के ऑपरेशन में सिलाई के लिए इसी प्रकार से अर्जियोपे जाति की मकड़ी के जाले से बना धागा काम में लाया जाता है। आस्ट्रेलिया के आदिवासी एक बड़ी जाति की मकड़ी के जाले से मछलियाँ और चिड़ियाँ पकड़ने के कई तरह के मजबूत जाल बुनते हैं। वे मुद्दतों चलते हैं और सहज ही नहीं टूटते। इस धागे की मोटाई एक इंच का लाखवाँ भाग होती है। साधारणतया जो एक धागा हमें दिखाई देता है, उसमें दर्जनों पतले धागे होते हैं। उनसे मिलकर एक इकाई बनती है। वे परस्पर किस कुशलता के साथ काते और ऐंठे गए होते हैं, यह देखकर स्तब्ध रह जाना पड़ता है। यह धागे लचकदार होते हैं और आकार से सवाए खिंचकर बढ़ सकते हैं। जब कोई धागा टूट जाता है तो मकड़ी उसमें नया लस लगाकर मजबूत कर देती है। इस प्रकार वे टूट-फूट के कारण नष्ट होने से बचे रहते हैं।

घरेलू झींगुर जब रात को अपना आरकेस्ट्रा बजाता है तो लगता है कि स्वर-ताल का समग्र ज्ञान रखने वाला कोई कुशल कलावंत सधे हुए हाथ से वायलिन के स्वर झंकृत कर रहा है और साथ ही

उनके सहायक अन्य बाजे बज रहे हैं। उसकी ध्वनि इतनी तीव्र होती है मानो वाद्य यंत्र के साथ किसी ने शक्तिशाली लाउडस्पीकर फिट कर दिया हो। यह ध्वनि-विस्तार यंत्र सहित वायलिन उसकी पीठ पर लदा होता है।

झींगुर की पीठ पर दो चौड़े भूरे रंग के पंख होते हैं। इन्हीं के सहारे वह कुलाचें भरता है। इन पंखों में कुछ धारियाँ होती हैं। इन्हीं को परस्पर घिसकर वह अपना संगीत प्रवाह निःसृत करता है। यही वह उपकरण है, जिससे कई प्रकार की स्वर धाराएँ निकलती हैं। मोटे रूप से एक जैसी ध्वनि सुनाई देती है, पर ध्यान देने पर प्रतीत होता है कि इसमें एक नहीं कितने ही उतार-चढ़ाव भरे स्वर हैं। उनमें मुख्यतः तीन और विशेषतः सत्रह स्वर सुने जा सकते हैं। कभी धीमी, कभी तीव्र आवाजें निकलती हैं और वे सदा एक जैसी नहीं होतीं, वरन राग-रागनियों की तरह अपने धारा प्रवाह में हेर-फेर उत्पन्न करती हैं।

भारतीय संगीत शास्त्र में ऋतु एवं समय के अनुरूप राग-रागनियाँ गाए-बजाए जाने का अनुशासन है। अब वह परंपरा संगीतज्ञों ने छोड़ना शुरू कर दिया है, पर झींगुर अपने लिए प्रकृति द्वारा निर्धारित संगीत परंपरा का पूरी तरह पालन करते हैं। उनके गीत वातावरण के तापमान का प्रतिनिधित्व करते हैं। ५५ अंश फारेनहाइट से कम तापमान पर झींगुर मौन साधे रहते हैं। १०० से ऊपर यह गरमी निकल जाए तो भी वे चुप हो जाते हैं। ५५ और १०० डिगरी के बीच का तापक्रम रहेगा, तो ही वे अपना वायलिन बजाएँगे। उसका संगीत न निरुद्देश्य होता है और न स्वर-ताल से रहित। इस गायन में उनकी प्रसन्नता, कठिनाई, क्षुधा, भय, आक्रोश, प्रणय, निमंत्रण आदि के भाव भरे रहते हैं। स्वर, ताल में ऐसी क्रमबद्धता रहती है कि वे संगीतशास्त्र की परीक्षा में शत-प्रतिशत नंबरों से उत्तीर्ण हो सकते हैं। उनकी झंकार एक मील की दूरी तक टैप की गई है।

प्रकृति की संरचना में एक-से-एक अद्भुत आकार-प्रकार और क्षमताओं के प्राणी भरे पड़े हैं। बारीकी से उन्हें समझा, देखा जाए तो प्रतीत होता है कि अपने बुद्धिबल मात्र पर अहंकार करने वाला मनुष्य अन्य प्राणियों की तुलना में कितना असमर्थ-अक्षम है।

चीता सबसे तेज दौड़ने वाला जानवर है। वह एक मिनट में एक मील दौड़ सकता है—एक घंटे में साठ मील। आस्ट्रेलिया का कंगारू ऊँची कूद में अद्वितीय है। उसकी उछाल ४० फीट तक ऊँची होती है। मात्र पाँच इंच शरीर का अफ्रीका में पाया जाने वाला जेंवोंआ १५ फुट तक ऊँचा उछल सकता है।

पक्षियों में गरुड़ की उड़ान सबसे तेज है। वह २०० मील प्रति घंटे की लंबी उड़ान भर सकता है। तेज रफ्तार से हवा में गोता खाने वाला और फिर सीधे ऊपर उड़ जाने के करतब में गोशाल्क जाति के बाज से आगे बढ़कर बाजी मारने वाला और कोई नहीं है।

उल्लू रात को आसानी से देख सकता है। उसकी आँखों में मनुष्य की अपेक्षा दस गुनी अधिक रोशनी है। बाज की आँखें लाखों रुपये में मिलने वाली दूरबीन से भी बेहतर होती हैं। एक हजार फुट ऊँचाई पर उड़ते हुए भी वह घास या झाड़ी में छिपे मेंढक, चूहों या साँपों को आसानी से देख सकता है। खरगोश की आँखों की बनावट ऐसी है कि सामने की ही तरह पीछे भी साथ-साथ देख सकता है। बिना सिर घुमाए आगे-पीछे दोनों तरफ के दृश्य देखते चलना थलचरों में सचमुच अद्भुत है। यह विलक्षणता मछलियों में भी पाई जाती है। वे पानी में नीचे और ऊपर दोनों ओर देखती हैं।

हाथी की सूँड़ में ४० हजार मांसपेशियाँ होती हैं। इसी से उसमें इतनी लचक रहती है कि जमीन पर पड़ी सुई तक को पकड़ सके। विशालकाय प्राणियों में सबसे बड़ी ह्वेल मछली होती है। उसकी लंबाई ११० फुट और वजन १४० टन तक होता है। प्रसवकाल में अपने बच्चे के अनुपात का रिकार्ड भी मादा व्हेल ही तोड़ती है। नवजात बच्चा प्रायः माँ से लगभग आधा होता है।

शेर का पंजा और ह्वेल का दुम इतने सशक्त होते हैं कि प्राणधारियों में से किसी का भी एक अंग उसके अन्य अंगों की तुलना में इतना अधिक मजबूत नहीं होता। गहरे समुद्रों में पाया जाने वाला 'अष्टपद' का जरा-सा धड़ (आक्टोपस) सिर के बीच में होता है और हाथी की सूँड़ जैसी विशाल आठ भुजाएँ इतनी मजबूत होती हैं कि उनकी पकड़ में आया हुआ बड़े-से-बड़ा प्राणी जीवित निकल ही नहीं सकता। अमेरिका में पाया जाने वाला एक समुद्री घोंघा, अटलांटिक में पाई जाने वाली सीपियाँ और कुज किस्म की मछलियाँ प्रजनन की प्रतियोगिता में चेंपियन ठहरती हैं। वे प्रायः ४० से ५० करोड़ तक अंडे हर वर्ष देती हैं।

आकाश की तरह पानी के भीतर भी उड़ सकने में समर्थ आरेब्डक नामक वाटर प्रूफ पक्षी अनोखा है। वह तैरता-उड़ता महीनों समुद्र में ही गुजारा करता रहता है। आर्कटिक सागर में उत्तरी छोर पर बरफीले प्रदेश में रहने वाले कुछ पक्षी बिना रुके २२ हजार मील की लंबी यात्रा करके दक्षिण ध्रुव पर जा पहुँचते हैं।

कितने ही पक्षी ऋतु परिवर्तन के लिए झुंड बनाकर सहस्रों मील की लंबी उड़ानें भरते हैं। वे धरती के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जा पहुँचते हैं। इनकी उड़ानें प्रायः रात में होती हैं। उस समय प्रकाश जैसी कोई इस प्रकार की सुविधा भी नहीं मिलती, जिससे वे यात्रा लक्ष्य की दिशा जान सकें। यह कार्य उनकी अंतःचेतना पृथ्वी के इर्द-गिर्द फैले हुए चुंबकीय घेरे में चल रही हलचलों के आधार पर ही पूरा करती हैं। इस धारा के सहारे वे इस तरह उड़ते हैं, मानो किसी सुनिश्चित सड़क पर चल रहे हों।

राजाओं, सेनापतियों के घोड़े, हाथी उनका इशारा समझते थे और सम्मान करते थे। बिगड़े हुए हाथी को राजा स्वयं जाकर संभाल लेते थे। राणाप्रताप, नैपोलियन, झाँसी की रानी के घोड़े मालिकों के इशारे ही नहीं उनकी इच्छा को भी समझते थे और उनका पालन करते थे। यह उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व का अल्प

विकसित बुद्धि वाले घोड़े, हाथी आदि पशुओं पर पड़ा हुआ प्रत्यक्ष प्रभाव ही था।

मधुमक्खियों की नेत्र रचना देखकर विज्ञानवेत्ता पोलारायड ओरिसंटेशन इंडिकेटर नामक यंत्र बनाने में समर्थ हुए हैं। यह ध्रुव प्रदेश में दिशा ज्ञान का सही माध्यम है। उस क्षेत्र में साधारण कुतुबनुमा अपनी उत्तर-दक्षिण दिशा बताने वाली विशेषता खो बैठते हैं, तब इसी यंत्र के सहारे उस क्षेत्र के यात्री अपना काम चलाते हैं।

समुद्री तूफान आने से बहुत पहले ही समुद्री बतखें आकाश में उड़ जाती हैं ओर तूफान की परिधि के क्षेत्र से बाहर निकल जाती हैं। डालफिन मछलियाँ चट्टानों में जा छिपती हैं, तारा मछ्ली गहरी डुबकी लगा लेती हैं और ह्वेल उस दिशा में भाग जाती है, जिसमें तूफान न पहुँचे। यह पूर्वज्ञान इन जल-जंतुओं का जितना सही होता है, उतना ऋतु विशेषज्ञों के बहुमूल्य उपकरणों को भी नहीं होता। मास्को विश्वविद्यालय ने इन्हीं जल-जंतुओं के अत्यंत सूचना ग्राहक कानों की नकल पर ऐसे यंत्र बनाए हैं, जो अंतरिक्ष में होने वाली अविज्ञात हलचलों की पूर्व सूचना संग्रह कर सकें। ऐसा अत्यंत सूक्ष्म ध्वनि-प्रवाहों को सुन-समझ लेने से ही संभव होता है।

जीव-जंतुओं की विशिष्ट क्षमताओं का आधार उनकी ऐसी संरचना में सन्निहित है, जो मनुष्यों के हिस्से में नहीं आई है। अब विज्ञान मनुष्येतर विभिन्न प्राणियों की शारीरिक एवं मानसिक संरचना में जुड़ी हुई अद्भुत विशेषताओं को खोजने में संलग्न है। इसका एक स्वतंत्र शास्त्र ही बन गया है, जिसका नाम है—बायोनिक्स। इसे स्पेशल पर्पस मैकेनिज्म-विशेषोद्देश्य व्यवस्थाएँ भी कहा जाता है।

किसी अँधेरे कमरे में बहुत पतले ढेरों तार बँधे हों, उसमें चमगादड़ छोड़ दी जाए तो वह बिना तारों से टकराए रात भर उड़ती रहेगी। ऐसा इसलिए होता है कि उसके शरीर से निकलने वाले

कंपन तारों से टकराकर ध्वनि उत्पन्न करते हैं, उन्हें उनके संवेदनशील कान सुन लेते हैं और यह बता देते हैं कि तार कहाँ बिखरे पड़े हैं। बिना आँखों के ही उसे इस ध्वनि माध्यम से अपने क्षेत्र में बिखरी पड़ी वस्तुएँ दीखती रहती हैं।

मेंढक केवल जिंदा कीड़े खाता है। उसके सामने मरी और जिंदी मक्खियों का ढेर लगा दिया जाए तो उनमें से वह चुन-चुनकर केवल जिंदा मक्खियाँ ही खाएगा। इसका कारण मृतक या जीवित मांस का अंतर नहीं, वरन् यह है कि उसकी विचित्र नेत्र संरचना केवल हलचल करती वस्तुएँ ही देख पाती हैं, स्थिर वस्तुएँ उसे दीखती ही नहीं। मरी मक्खी को किसी तार से लटका कर हिलाया जाए तो वह उसे खाने के लिए सहज ही तैयार हो जाएगा।

उल्लू की ध्वनि संवेदना उसके शिकार का आभास ही नहीं कराती, ठीक दिशा, दूरी और स्थिति भी बता देती है। फलतः वह पत्तों के ढेर के नीचे हलचल करते चूहों पर जा टूटता है और एक ही झपट्टे में उसे ले उड़ता है।

गहरी डूबी हुई पनडुब्बियों में रेडियो संपर्क निरंतर कायम रखना कई बार बड़ा कठिन होता है, क्योंकि प्रेषित रेडियो तरंगों का बहुत बड़ा भाग समुद्र का जल ही सोख लेता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए मछली में सन्निहित उन विशेषताओं को तलाश किया जा रहा है जिसके आधार पर वह जलराशि में होने वाली जीव-जंतुओं की छोटी-छोटी हलचलों को जान लेती है और आत्मरक्षा तथा भोजन-व्यवस्था के प्रयोजन पूरे करती है।

रैटल साँप तापमान के अत्यंत न्यून अंतर को जान लेता है। चूहे, चिड़िया आदि के रक्त का तापमान अत्यंत नगण्य मात्रा में ही भिन्न होता है, पर यह साँप उस तापमान के अंतर को जानकर अपना प्रिय आहार चुनता है। यह कार्य वह गंध के आधार पर नहीं अपने ताप मापक शरीरी अवयवों द्वारा पूरा करता है। वैज्ञानिकों ने इसी

संरचना को ध्यान में रखते हुए इन्फ्रा रेड किरणों का उपयोग करके तापमान के उतार-चढ़ाव का सही मूल्यांकन कर सकने में सफलता प्राप्त की है।

पनडुब्बियों को पानी के भीतर देर तक ठहरने के लिए ऑक्सीजन की अधिक मात्रा अभीष्ट होती और बनने वाली कार्बन डाई-ऑक्साइड को बाहर फेंकने की जरूरत पड़ती है। ये दोनों कार्य पानी के भीतर ही होते रहें, तभी उसका अधिक समय समुद्र में रह सकना संभव हो सकता है। मछली पानी से ही ऑक्सीजन खींचती है और उसी में अपने शरीर की कार्बन गैस खपा देती है। यह पनडुब्बियों के लिए भी संभव हो सके, इसका रास्ता मछलियों की संरचना का गहन अध्ययन करने के उपरांत ही प्राप्त किया जा सकता है।

हवाई जहाजों की बनावट में पिछले चालीस वर्षों में अनेक उपयोगी सुधार किए गए हैं। उसके लिए विभिन्न पक्षियों की संरचना और क्षमता का गहरा अध्ययन करने में विशेषज्ञों को संलग्न रहना पड़ा है। भुनगों की शरीर-रचना के आधार पर वायुयानों में दूरदर्शन के लिए प्रयुक्त होने वाला एक विशेष यंत्र 'ग्राउंड स्पीड मीटर' बनाया गया है। भुनगों के आँखें नहीं होतीं। वे अपना काम विशेष फोटो सेलों से चलाते हैं। वही प्रयोग इस यंत्र में हुआ है।

अटलांटिक सागर के आर-पार रेडियो प्रसारणों को ठीक तरह पहुँचाने का रास्ता बतलाने में जिन कंप्यूटरों का प्रयोग होता है, वे कई बार असफल हो जाते हैं, क्योंकि मौसम की प्रतिकूलता रेडियो तरंगों में व्यवधान उत्पन्न करती है। अस्तु, ध्वनि-प्रवाह के लिए नए रास्ते खोजने पड़ते हैं। इस कार्य के लिए चींटी की मस्तिष्कीय संरचना अधिक उपयुक्त समझी गई है। वैज्ञानिकों का कहना है कि चींटी के मस्तिष्क की तुलना में हमारे वर्तमान कंप्यूटर अनपढ़ बालकों की तरह पिछड़े हुए हैं।

# कीड़ों की विलक्षण क्षमता

विलक्षणताओं की दृष्टि से देखा जाए तो छोटे-छोटे जीव-जंतु भी असाधारण सूक्ष्म चेतना से संपन्न पाए जाते हैं और वे ऐसे होते हैं, जिन्हें विलक्षण कहा जा सके।

कैरियन कीड़े की घ्राणशक्ति सबसे अधिक मानी जाती है। वह मीलों दूर से मुर्दा मांस का पता लगा लेता है और उड़ता-फुदकता हुआ उस खाद्य भंडार तक पहुँचकर तृप्तिपूर्वक भोजन करता है।

समुद्र में हलके ज्वार-भाटे प्रतिदिन ५० मिनट के अंतर से आते हैं। केकड़े का रंग-परिवर्तन भी प्राय: ५० मिनट के ही अंतर पर होता है।

कीड़ों के कान नहीं होते, यह कार्य वे अगली टाँगों के जोड़ों में रहने वाली ध्वनि ग्रहण शक्ति द्वारा पूरा कर सकते हैं। तितलियों के पंखों में श्रवण शक्ति पाई जाती है। झींगुर आदि जो आवाज करते हैं, वह उनके मुँह से नहीं, बल्कि टाँगों की रगड़ से उत्पन्न होती है। कीड़ों की अपनी विशेषता है, उनके फेफड़े नहीं होते, पर साँस लेते हैं। वे सुन सकते हैं, पर कान नहीं होते, वे सूँघते हैं, पर नाक नहीं होती। दिल उनके भी होता है, पर उसकी बनावट हमारे दिल से भिन्न प्रकार की होती है।

नेस, सलामैसीना, आईस्टर, स्नेल (घोंघा), फ्रेस वाटर मेस (संबूक), साइलिस, चैटोगेस्टर स्लग (मंथर), पायनोगोनाड (समुद्री मकड़ी) आदि क्रमियों में भी यह गुण होता है कि उनके शरीर का कोई अंग टूट जाने पर ही नहीं, वरन मार दिए जाने पर भी उसका अंग या पूरा शरीर उसी प्रोटोलाज्म से फिर नया तैयार कर देता है। केकड़ा तो इन सब में विचित्र है। टैंक की-सी आकृति वाले इस जीव की विशेषता यह है कि अपने किसी अंग को तुरंत क्षति पूर्ति कर लेने की प्रकृतिदत्त सामर्थ्य रखता है।

एन्ग्रालिश मछली वसंत ऋतु में अपनी ही चैनेल में पाई जाती है किंतु अंडे के लिए वह 'ज्वाइडर जा' के बाहरी हिस्से में पहुँच जाती है। सारडिना मछली जुलाई से दिसंबर तक कार्नवेल में रहती है, पर जाड़ा प्रारंभ होते ही वह गरम स्थानों की ओर चल देती है। सामों मछली समुद्र में पाई जाती है, पर उसे गंगा और यमुना नदी के जल से अपार प्रेम है। अपने इस अपार प्रेम को प्रदर्शित करने और अच्छे वातावरण में अपने बच्चों के पालन-पोषण के लिए वह हजारों मील की यात्रा करके गंगा, यमुना पहुँचती है। अंडे-बच्चे सेने के बाद भोजन के लिए वह फिर अपने मूल निवास को लौट आती है। कहा जाता है सामों दीर्घजीवी और बड़ी चतुर मछली होती है।

यों तो संसार की अधिकांश सभी जातियों की मछलियाँ उल्टी दिशा में चलती हैं, पर योरोप में पाई जाने वाली एन्युला बहाव की उल्टी दिशा में चलकर लंबी यात्रा करने वाली उल्लेखनीय मछली है। ज्ञान और सत्य की शोध में हिमालय की चोटियों तक पहुँचने वाले भारतीय योगियों के समान यह एन्युला मछली अटलांटिक महासागर पार करके गहरे पानी की खोज में बरमुदा के दक्षिण में जा पहुँचती है। बरमुदा, अमेरिका के उत्तरी कैरोलाइन राज्य से ६००-मील पूर्व में स्थित ३५० छोटे-छोटे द्वीपों का एक समूह है।

वहाँ अंडे-बच्चे देकर यह अपने घर लौट जाती है। उनके प्रवासी बच्चों में अपने माता-पिता, पूर्वजों और संस्कृति के प्रति इतनी प्रगाढ़ निष्ठा होती है कि ढाई-तीन साल के होते ही वे वहाँ से चल पड़ते हैं और ५६ महीने की यात्रा करते हुए अपने जाति भाइयों से जा मिलते हैं।

मनुष्य जिन सिद्धियों और क्षमताओं को लंबी योग-साधनाओं के द्वारा प्राप्त करता है, उनमें से कई जीव-जंतुओं को सहज ही प्राप्त होती हैं। इन्हें प्रकृति का योगी कहा जा सकता है। न जाने क्यों और कैसे मनुष्य में सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी होने की अहमन्यता

विकसित हो गई, जबकि होना यह चाहिए था कि मनुष्य सभी प्राणियों को भी जिज्ञासा भरी दृष्टि से देखता और उनकी अनंत क्षमताओं से कुछ सीखने का प्रयत्न करता। यदि ऐसा हुआ होता तो स्थिति कुछ और ही होती।

इन जीवों की जिन्हें अभागे और बेचारे कहा जाता है, वस्तुतः वे ऐसे हैं नहीं। इन जीवों को भी प्रकृति ने इतने उपहार दिए हैं कि उन्हें मनुष्य से कुछ कम नहीं अधिक ही कहा जाना चाहिए।

पक्षियों की तरह अकेले किसी भी दिशा और ऊँचाई में उड़ने के लिए, संभव है मनुष्य को कई सदियाँ लग जाएँ। मछलियों की तरह दिन-दिन भर पानी में तैरना मनुष्य के वश की बात नहीं। मनुष्य को गगनचुंबी इमारतें और बड़े-बड़े पुल तथा बाँध बांधने पर गर्व हो सकता है, पर इस कला में तो दीमक-चींटियाँ और मधुमक्खियों की कुशलता कतई कम नहीं। बीवर जैसा चतुर इंजीनियर जो बिना प्रशिक्षण प्राप्त किए अपनी क्षमता प्रदर्शित कर सकताहै, मनुष्यों में कहाँ मिलेगा? बीवर या ऊदबिलाव अपनी आवश्यकता के लिए बहुत सुदृढ़ बाँध बनाते पाए गए हैं।

चींटी अपने भार से ७० गुना अधिक भार सहज ढो सकती है। चींटी की तुलना में मनुष्य का जितना अधिक वजन है, उस हिसाब से उसे बिना पहिये की मालगाड़ी का इंजन जमीन में खींच लेना चाहिए, पर मनुष्य में इतनी क्षमता है क्या? पिस्सू, मेढक अपनी ऊँचाई से २५ गुना ऊँचा उछल सकते हैं। मनुष्य इसी तुलना में उछले तो उसे ४५० फुट आसानी से उछल जाना चाहिए, जबकि वह १० फुट ऊँची दीवार भी नहीं फाँद सकता। मधुमक्खी छत्ता बनाती है तो ऊपर की डाल पर, यदि १० मधुमक्खियाँ हों तो उन पर नीचे १०००० मधुमक्खियों का लगभग ७ किलो भार होगा। इस औसत से एक मनुष्य की टाँगें पकड़ कर २००० व्यक्तियों को लटक जाना चाहिए, पर कल्पना कीजिए कि दुनिया का बड़े-से-बड़ा पहलवान भी ऐसा कर सकेगा क्या? चील की जितनी तेज

आँखें होती हैं, उसी अनुपात से कहीं मनुष्य की दृष्टि तेज होती तो प्लूटो ग्रह में चल रही गतिविधियाँ धरती से ही देख लेता। चमगादड़ जैसी सूक्ष्म श्रवण शक्ति इनसान को मिल सकी होती तो वह धरती के किसी भाग की किसी कोठरी के अंदर बैठकर भी सौर मंडल की घूर्णन की आवाज, सौर घोष आसानी से सुन लेता। कुत्ते जैसी घ्राणशक्ति यदि मनुष्य को मिल जाती तो मंगल से उठ रही अमोनिया गैस का अनुभव उसे हरिद्वार में बैठे-बैठे मिल जाता। एक तितली दिन में जितना उड़ती है, यदि वह एक सीध में लगातार उड़े तो वह दिन भर में १० मील उड़ सकती है। मनुष्य का भार उनकी तुलना में कई हजार गुना है। इस तुलना में तो उसे एक दिन में अधिक नहीं तो पृथ्वी की एक परिक्रमा तो आसानी से कर ही लेनी चाहिए थी।

किसी को कुत्ता कहना मानवीय संस्कृति में सबसे बुरी गाली है, किंतु इस प्रकृति के योगी में ऐसी अतींद्रिय क्षमताएँ परमात्मा ने विकसित की हैं कि वह आने वाली प्राकृतिक विपदाओं, दैवी आपत्तियों की काफी समय पूर्व सूचना देने में सक्षम है। इटली का विसूवियस ज्वालामुखी पहली बार फटा, उससे सात दिन पूर्व तक कुत्ते भयानक आवाज में रोने-चिल्लाने और मानवीय विनाश की चेतावनी देने लगे थे किंतु किसी ने उनकी संवेदना को परखा नहीं और लाखों व्यक्ति ज्वालामुखी के लावे में जल मरे। १९६१ में हुए भारत-पाकिस्तान युद्ध की चेतावनी कुत्तों ने पहले ही कर दी थी। गाँवों, शहरों में किसी की मृत्यु की सूचना उस मुहल्ले के कुत्ते पहले ही दे देते हैं।

वर्षा आने वे पूर्व दीमकों के झुंड एकाएक विलुप्त हो जाते हैं। मकड़ियाँ जाला समेटने लगती हैं। चींटियाँ अपनी खाद्यान्न व्यवस्था सुरक्षित करने लगती हैं। असामयिक वृष्टि की सूचना गौरैया मिट्टी स्नान द्वारा पहले ही देती है। इस अनुपात से मनुष्य को जैसी सूक्ष्म बुद्धि प्राप्त है, उसके अनुसार उसे त्रिकालदर्शी से कम नहीं होना चाहिए, पर ऐसे अवसरों पर उसकी दयनीयता देखते ही बनती है।

कारण स्पष्ट है कि वह अपनी इन दैवी क्षमताओं के विकास की बात तो दूर, उन्हें पहचानने और अनुभव करने तक का प्रयास नहीं करता। उसकी संपूर्ण चेष्टाएँ मात्र इंद्रियों की क्षणिक खुजली को ही शांत करने में लगी रहती हैं।

मनुष्य शरीर जटिल रसायनों का विलक्षण भांडागार है। 'हारमोन्स' के रूप में जिन स्रावों का वैज्ञानिकों और शरीर शास्त्रियों को ज्ञान हुआ है, उससे तो पुराण युग की कपोल-कल्पनाएँ भी साकार सत्य होने जा रही हैं। आकार वृद्धि में सुरसा एक उदाहरण बन गई तो हनुमान के 'मशक समान' तथा 'तब कपि भयउ पर्वताकारा' की कहानियाँ आए दिन सुनने में आती हैं। हारमोन्स ने इन संभावनाओं पर अपनी स्पष्ट मुहर लगा दी है, किंतु आज इन क्षमताओं का कोई उपयोग कर पाता है क्या ? इस दृष्टि से छोटा-सा 'मिक' ही भला, जो अपने से कई गुने शक्तिशाली शत्रु को भी अपने शरीर से इच्छानुसार कम या अधिक मात्रा में एक विशेष प्रकार की रासायनिक दुर्गंध निकालकर भगा देता है। यह मिक वही हैं, जिनकी खाल के कोट पहनने के लिए पश्चिमी लोग लालायित रहते और प्रचुर धन व्यय करते हैं। मनुष्य शरीर में जबरदस्त रोग निरोधक शक्ति है, पर वह मच्छर तक का कुछ नहीं बिगाड़ पाता।

यह नहीं सोचना चाहिए कि परमात्मा ने मनुष्य को ही विशेष प्यार-दुलार दिया है तथा विशेष महत्त्व दिया है। प्रकृति ने अपने सभी पुत्रों को परिस्थिति और आवश्यकता के अनुरूप विशेष सामर्थ्य दी है, ताकि वे अपना जीवन-अस्तित्व बनाए रखे। पिछले कई वर्षों से हिमालय पर हिममानव के अस्तित्व की चर्चा होती रही है। उसके संबंध में जीव शास्त्री , विकासवादी, अध्यात्मवादी भिन्न-भिन्न प्रकार की कल्पनाएँ करने और मान्यताएँ व्यक्त करते हैं। सच क्या है, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, पर यह तो ध्रुव सत्य है कि अनेक प्रकार की कल्पना और मान्यता का वह जीव न केवल भारत वरन् सारे संसार के लिए ज्ञान-विज्ञान की एक नई

पहेली के रूप में उभरा। उसके अस्तित्व के बारे में किसी को शंका नहीं है, पर बरफ में रहने वाला यह हिम मानव कौन है ? क्या करता है ? और उस क्षेत्र में जहाँ जीवन के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती, किस प्रकार नग्न शरीर विचरण करता है ? यह प्रश्न आज तक भी कोई हल नहीं कर पाया।

पहले तो लोग उसके अस्तित्व पर भी शंका करते थे। पर वह वर्णन जो किंवदंतियों के रूप में चिरकाल से चले आ रहे थे, पहली बार उस समय सत्य प्रमाणित हुए, जब सुप्रसिद्ध पर्वतारोही तेनसिंह और एडमंड हिलेरी ने १९५४ में हिमालय की चढ़ाई की। एडमंड हिलेरी ने १९ हजार फुट की ऊँची चोयांग घाटी पर अपना खेमा गाड़ रखा था, उस समय की बात है। एक दिन जब वे उस क्षेत्र के निरीक्षण के लिए बाहर निकले और बरफ पर चलते हुए काफी दूर निकल गए, तब एकाएक उन्हें बरफ पर बने हाल ही के पदचिह्नों ने चौंका दिया। हिममानव की लोक-कथाएँ उनने सुनी अवश्य थीं, यह भी सुना था कि यह प्राणी उस दुर्गम क्षेत्र में रहता है, जहाँ मनुष्य पहुँच भी नहीं सकता था, पर पहुँचने के लिए उन्हें स्वयं अपने जीवन रक्षार्थ करोड़ों रुपयों की लागत के उपकरण ले जाने पड़े थे, फिर भी मौत हर क्षण छाया की तरह घूमती रहती, उस बीहड़ हिमस्थली में मनुष्य के निवास की तो बात वे सोच भी नहीं सकते थे। पदचिह्नों का पीछा करते हुए वे काफी दूर तक गए, पर कहीं न कुछ दिखा और न कुछ मिला। अपनी यात्रा के संस्मरणों में पहली बार उन्होंने इस हिममानव का विस्तार से उल्लेख किया, तब विज्ञान को अनेक नई धारणाएँ मिलीं कि जीवन के अस्तित्व के लिए अति शीत और उच्चतम तापमान भी बाधक नहीं है। मनुष्य शरीर संसार की हर परिस्थिति में रखने योग्य बनाया जा सकता है। भले ही भारतीय योग दर्शन और सिद्धियों जैसे वे आधार आज लोगों की समझ में न आएँ, पर यह निर्विवाद सत्य है कि मनुष्य उन अभूतपूर्व शक्तियों और सिद्धियों का समन्वय है,

जिन्हें विकसित कर वह शरीर से ही परमात्मा की कल्पना को सार्थक कर सकता है।

पीछे हिम मानवों की खोज का सिलसिला चल पड़ा। हर पर्वतारोही उनकी टोह लेने लगा। उनसे उसके बारे में नई-नई विस्मयबोधक जानकारियाँ मिलीं। हिम मानव एक नहीं अनेक हैं। उन्हें देखा भी गया है, पर अब तक उनका फोटो शायद ही कोई ले पाया हो, क्योंकि वह शरीर से असाधारण क्षमता वाले होते हैं। कुछ लोगों का तो कहना है कि किसी भी स्थान में अंतरध्यान भी हो सकते हैं और जिस तरह कोई मनुष्य पानी में डुबकी लगाकर दूसरे स्थान पर जा निकलता है, उसी प्रकार कहीं भी लुप्त हो जाने के बाद वे कहीं जाकर प्रकट भी हो सकते हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो हिमालय की निचली तराइयों में जहाँ आबादी रहती है, वहाँ वे कैसे उतर आते और एक रात के अंतर से ही जो यात्रा कई महीनों में संपन्न हो सकती है, उसे पूरा करके तुरंत ही २० हजार फुट से अधिक ऊँचाई पर कैसे भाग जाते?

चेहरा लंबा और पतला होता है, आँखें लाल और दाँत बड़े-बड़े, ७ से ८ इंच; लंबी जीभ और बीसियों आदमियों के बराबर की ताकत तभी संभव है, जबकि व्यक्ति नितांत ब्रह्मचारी और प्राकृतिक जीवन जीता हो या फिर योग सिद्ध हो। डॉ० ईजार्ड का कहना है कि वे मांसाहारी होते हैं, इसके प्रमाण में वे बताते हैं कि मैंने उसके भोजन एवं मांस (यतीज डाइटिंग) का रासायनिक विश्लेषण कर लिया है, पर अन्य लोगों का कथन है कि वे पूर्ण शाकाहारी होते हैं और उनके शरीर में मांस बनता ही नहीं। उनके शाकाहारी होने का प्रमाण तराई क्षेत्रों के प्रचलित लोकगीत और कथाओं में भी मिलता है। रात को जब स्त्रियाँ सोने की तैयारी करती हैं, तो बड़ी-बूढ़ी माताएँ वधुओं को हिदायत देती हैं कि देखो बहू चक्की में आटा या गेहूँ पड़ा न रह जाए, नहीं तो हिममानव आएगा और उसे खा जाएगा।

सोचने वाली बात यह है कि केवल आटा और चक्की में बचे दानों के लालच में हिम मानव २० हजार फुट की दुर्गम पहाड़ियाँ क्यों उतरेगा? इससे पूर्व उसे हजारों किस्म के जंगली जानवर मिल सकते हैं, आदमखोर हो तो वह गाँव के बच्चों को उठाकर ले जा सकता है, दाने ही क्यों चुराने लगा? उसके स्वभाव से पता चलता है कि वह शाकाहारी है, उनके व्यवहार और क्रिया-कलापों से पता चलता है कि वह कोई अति मानवीय शक्तियों का पुंज कोई सिद्ध योगी ही होना चाहिए। कुछ तो उस क्षेत्र का जलवायु ही सहायक होता है, कुछ योगाभ्यास द्वारा विकसित शक्तियाँ हो सकती हैं, जिनके कारण वह उस एक क्षण में बरफ कर देने वाले दुर्गम क्षेत्र में भी सानंद जीवन जीता है।

काठमांडू के लामा श्री पुण्य वज्र ने बहुत समय तक हिमालय के इस प्रदेश में बिताए हैं। एक यती-योगी, संत-संन्यासी के ढंग पर उन्होंने हिम मानव की खोज की। उनका कहना है कि मैं बहुत समय तक उनके साथ रहा और पाया कि उनकी क्षमताएँ बहुत ही विलक्षण हैं। यद्यपि उनकी बातों को पाश्चात्य लोग प्रामाणिक नहीं मानते तो भी यह बात तो अमेरिका के सुप्रसिद्ध जीव विशेषज्ञ श्री कैरोल वायमैन ने भी स्वीकार किया है कि हिम मानव की सामर्थ्य विलक्षण है। उदाहरणार्थ वह बहुत दूर की गंध से ही पहचान सकता है कि इस क्षेत्र में किधर से मनुष्य या कोई दूसरा जीव आ रहा है। वे मुख को देखकर ही भावों को भाँप जाते हैं। उनकी ताकत १५ व्यक्तियों की ताकत से बढ़कर होती है। वह अधिकांश बच्चों को ही दीखता है, इससे यह भी तय है कि वह मनुष्यों के स्वभाव से परिचित होता है और उसके विश्वासघात का उसे भय अवश्य रहता है, तभी तो वह उसकी परछाईं भी देखना नहीं चाहता। एक बार काठमांडू के एक बहिन-भाई ने उसे देखा। डॉ० सिल्कि जानसन ने उन दोनों बच्चों को मनुष्य से मिलती आकृतियों वाले कुछ बंदरों और गोरिल्लाओं के चित्र दिखाकर

पूछा—तुमने जिस आकृति को देखा, वह इनमें से किससे मिलता-जुलता था? अलग-अलग ले जाकर चित्र दिखाने और पूछे जाने पर दोनों ही बालकों ने गोरिल्लाओं और ओरांग उटांग के चित्र चुनकर कहा—वह इसी शक्ल से मिलता-जुलता था, पर यह नहीं, इससे भिन्न था।

अनेक बार दिखा है कि यह हिम मानव और हर बार उसने वैज्ञानिकों की बुद्धि को चकमकाया-चौंधाया है। अनेक प्रकार की कल्पनाओं और मान्यताओं के बावजूद यह निश्चित नहीं हो सका कि यह हिम मानव है अथवा कोई जंगली जीव है।

जो भी हो, उपर्युक्त विवरण में से इतना तो स्पष्ट है ही कि मनुष्येतर प्राणियों का संसार और जीवन भी कम विलक्षण तथा रहस्यमय नहीं है।

# प्रकृति अनुसरण का पुरस्कार

महाबलिपुरम् से मद्रास (चेन्नई) जाते समय कोई सात मील आगे एक छोटा-सा नगर है—पक्षितीर्थम्। यहाँ ५५० सीढ़ियाँ चढ़ने पर पहाड़ी पर अवस्थित एक मंदिर है, जिसमें अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ रखी हैं।

मंदिर के पिछवाड़े लगभग १५० फुट लंबी और १५ फुट चौड़ी ढलवाँ चट्टान है। इस पर मध्याह्न को ११-१२ बजे के बीच दो सफेद गिद्ध पक्षियों का जोड़ा नित्य ही मंदिर का प्रसाद ग्रहण करने आता है। प्रतिमाओं के दर्शन से भी कहीं अधिक उत्सुकता दर्शकों को इन पक्षियों को देखने की होती है। अस्तु, वे बड़ी संख्या में दस बजे तक इकट्ठे हो जाते हैं।

दर्शकों की भारी भीड़ के बीच मंदिर का पुजारी दोनों हाथों में दो प्रसाद की कटोरियाँ लेकर खड़े हो जाते हैं। सफेद गिद्ध नियत समय पर निश्चित मुद्रा में आते हैं और चोंचों में प्रसाद भरकर पुन: आकाश में उड़ जाते हैं।

किंवदंती के अनुसार ये पक्षी कोई दो पुण्यात्मा हैं, जो नित्य वाराणसी गंगा स्नान करने जाते हैं, वहाँ से लौटकर यह प्रसाद ग्रहण करते हैं और फिर कहीं एकांत में जाकर भजन करते हैं। जो हो, दो विलक्षण पक्षियों का नियत समय पर, नियत स्थान पर, नियमित रूप से भोजन करने आना आश्चर्यजनक तो है ही।

तथ्य यह बताया जाता है कि यह पक्षी बचपन से ही पाले गए और उन्हें एक विशेष प्रकार के ऐसे नशीले आहार का अभ्यस्त

बनाया गया है, जो उन्हें अन्यत्र नहीं मिलता। समय पर ही आहार उन्हें मिलता रहा है, इसलिए उनकी चेतना नियत समय का ध्यान रखती है और ठीक निर्धारित समय पर उनके भीतर ऐसी छटपटाहट उत्पन्न होती है, जिससे प्रेरित होकर वे उपर्युक्त मंदिर की ओर धर दौड़ते हैं। समय, दिशा और उपलब्धि के संबंध में अंत:चेतना के प्रशिक्षित होने के कारण वे पक्षी ऐसा आचरण करते हैं, जैसे कोई अद्भुत अध्यात्म कहा जा सके।

वस्तुस्थिति जो भी हो, पर काल और दिशा के संबंध में अन्य प्राणधारी प्रकृति-प्रेरणा की तनिक भी अवज्ञा नहीं करते। इतना ही नहीं, अन्य प्रकृति-प्रेरणाओं को भी प्राणधारी पूरी निष्ठा के साथ सुनते और तदनुसार आचरण करते हैं। इस कारण उनमें अद्भुत विशेषताएँ देखने में आती हैं। इस तथ्य को यों भी समझा जा सकता है कि प्राणियों की शारीरिक, मानसिक व भौतिक शक्तियों का सृजन उनकी आवश्यकता और इच्छा के अनुरूप ही होता है। इस तथ्य को थोड़ा अधिक गहराई से विचार करने पर सहज ही जाना जा सकता है और अनेकों प्रमाण पाए जा सकते हैं।

समझा जाता था कि वर्षा होने से वृक्ष-वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं, पर पाया यह गया है कि वृक्षों की आवश्यकता उधर उड़ने वाले बादलों को पकड़कर घसीट लाती है और उन्हें अपने क्षेत्र पर बरसने के लिए बाध्य करती है। कुछ दिन पूर्व जहाँ बड़े रेगिस्तान थे, पानी नहीं बरसता था और बादल उधर से सूखे ही उड़ जाते थे, पर अब जब वहाँ वन लगा दिए गए हैं तो प्रकृति का पुराना क्रम बदल गया और अनायास ही वर्षा होने लगी है। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों के बारे में अब यह नया सिद्धांत स्वीकार किया गया है कि वहाँ की वन संपदा बादलों पर बरसने के लिए दबाव डालती है। बादलों की तुलना में चेतना का अंश वृक्षों में अधिक है, इसलिए वे विस्तार में बादलों से कम होते हुए भी सामर्थ्य में अधिक हैं।

अतएव दोनों की खींचतान में चेतना का प्रतिनिधि वृक्ष ही भारी पड़ता है।

आत्मरक्षा प्राणियों की एक महती आवश्यकता है। जीवों में जागरूकता और पराक्रम-वृत्ति को जीवंत बनाए रखने के लिए प्रकृति ने शत्रु पक्ष का निर्माण किया है। यदि सभी जीवों को शांतिपूर्वक और सुरक्षित रहने की सुविधा मिली होती तो फिर वे आलसी और प्रमादी होते चले जाते। उनमें जो स्फूर्ति और कुशलता पाई जाती हैं, वे या तो विकसित ही न होतीं या फिर जल्दी ही समाप्त हो जातीं।

सिंह, व्याघ्र, सुअर, हाथी, मगर आदि विशालकाय जंतु अपने पैने दाँतों से आत्मरक्षा करते हैं और उनकी सहायता से आहार भी प्राप्त करते हैं। साँप, बिच्छू, बर्रें, ततैया, मधुमक्खियाँ आदि अपने डंक चुभोकर शत्रु को परास्त करते हैं। घोंघा, केंचुआ आदि के शरीर से जो दुर्गंध निकलती है, उससे शत्रुओं को नाक बंद करके भागना पड़ता है। गैंडा, कछुआ, घोंघा, शंख, आर्मेडिलो आदि की त्वचा पर जो कठोर कवच चढ़ा रहता है, उससे उनकी बचत होती है। टिड्डे का घास का रंग, तितली फूलों का रंग, चीते पेड़-पौधे की छाया जैसा चितकबरापन, गिरगिट मौसमी परिवर्तन के अनुरूप अपना रंग बदलता है। ध्रुवीय भालू बरफ जैसा श्वेत रंग अपनाकर समीपवर्ती वातावरण में अपने को आसानी से छिपा लेते हैं और शत्रु की पकड़ में नहीं आते। कंकड़, पत्थर, रेत, मिट्टी, कूड़ा-करकट आदि के रंग में रँगकर कितने ही प्राणी आत्मरक्षा करते हैं। शार्क मछली बिजली के करेंट जैसा झटका मारने के लिए प्रसिद्ध है। कई प्राणियों की बनावट एवं मुद्रा ही ऐसी भयंकर होती है कि उसे देखकर शत्रु को बहुत समझ-बूझकर ही हमला करना पड़ता है।

शिकारी जानवरों को अधिक पराक्रम करना पड़ता है। इस दृष्टि से उन्हें दाँत, नाखून, पंजे ही असाधारण रूप से मजबूत नहीं मिले, वरन पूँछ तक की अपनी विशेषता है। यह अनुदान उन्होंने अपने संकल्प शक्ति के बल पर प्रकृति से प्राप्त किए हैं।

शेर का वजन, अधिक-से-अधिक ४०० पौंड होता है, जबकि गाय का वजन उससे दूना होता है। फिर भी शेर पूँछ के संतुलन से उसे मुँह में दबाए हुए १२ फुट ऊँची बाड़ को मजे से फाँद जाता है।

प्राणियों की शरीर रचना और बुद्धि संस्थान भी अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण हैं, पर उनकी सबसे बड़ी विशेषता है—संकल्प शक्ति, इच्छा तथा आवश्यकता। ये संवेदनाएँ जिस प्राणी की जितनी तीव्र हैं, वे उतने ही अनुदान प्रकृति से प्राप्त कर सकते हैं।

इसके साथ ही यह भी देखा गया है कि जिन प्राणियों की संवेदनाएँ जितनी शून्य, दुर्बल या कमजोर होती हैं, वे अन्य प्राणियों की तुलना में काफी पिछड़े होते हैं।

अध्ययन करने पर यह पाया गया है कि मांसाहारी पशु जो दूसरों की हिंसा करके ही अपना उदर पोषण करते हैं। वे भावना और सहृदयता की दृष्टि से अन्य प्राणियों की तुलना में बहुत पिछड़े हुए होते हैं। उनकी क्रूरता शिकार तक ही सीमित नहीं होती, वरन अपने निजी बच्चों के प्रति भी वे वैसे ही निर्दयी होते हैं। मौका मिल जाए तो अपने बच्चों का सफाया करने में वे चूकते नहीं। रीछ और बाघों की मादाएँ भी अपने नर देवताओं की इस क्रूरता से भली-भाँति परिचित होती हैं। इसलिए वे अपने छोटे बच्चों को छिपाए फिरती हैं। कहीं इधर-उधर जाती हैं तो बच्चों को झाड़ियों में छिपा जाती हैं। बच्चे भी डरे-सहमे तब तक चुपचाप अपनी जान बचाए बैठे रहते हैं, जब तक कि उनकी माँ लौटकर नहीं आ जाती। इस सिलसिले में कई बार तो बच्चों की हिमायत में मादा को नर से काफी झगड़ना पड़ता है और उसमें चोट-चपेट तक हो जाती है।

सिंह स्वभावतः बहादुर नहीं होता। शिकार करते समय लुक-छिपकर आक्रमण करने की और तनिक-सा खतरा दिखाई पड़ने पर भाग खड़े होने की प्रवृत्ति उसकी कायरता ही प्रकट करती है। हाँ, दाँत, पंजे, शरीर बनावट और क्रोध की मात्रा ही उसे वीर बनाए हुए है।

ईशागढ़ के राजा ने एक शेर का बच्चा पाला। उसे कटघरे में रखा जाता था और कटा हुआ मांस दिया जाता था। जवान हो गया तो एक दिन जिंदा बकरा उसके कटघरे में घुमाया गया और उसके द्वारा शिकार किए जाने का दृश्य देखने का प्रबंध किया गया, पर बकरे को देखते ही शेर डर गया और एक कोने में मुँह छिपाए बैठा रहा। दो घंटे तक यही स्थिति रही। जब बकरा बाहर निकाला गया, तब कहीं सिंह की जान में जान आई।

ऐसी ही एक घटना भरतपुर राज्य में बहुत दिन पूर्व हिंदी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर हुई थी। सिंह के कटघरे में सुअर छोड़ा गया तो सिंह डरकर हक्का-बक्का हो गया और सुअर को छेड़ने की बजाय अपनी जान बचाने की तह ढूँढ़ता रहा।

मन की दृष्टि से ही नहीं, शरीर की दृष्टि से भी सिंह पशु पिछड़े ही होते हैं और जल्दी थकते हैं। मांसाहारी प्राणी शक्तिशाली होते हैं और शाकाहारी दुर्बल। यह मान्यता सही नहीं है। मांसाहारियों में क्रूरता और धूर्तता की मात्रा अधिक होती है। शाकाहारी सरल स्वभाव के होते हैं। सरलता का अनुचित लाभ उठाकर ही मांसाहारी जीतते हैं अन्यथा शक्ति की दृष्टि से उनका पिछड़ापन ही सिद्ध होता है।

यदि सूँड़ को अस्त-व्यस्त करने में सिंह सफल न हो सके, तो हाथी निश्चय ही सिंह को मार देगा। सिंह और हाथी के युद्ध में यदि दाव लग जाए तो सिंह को सूँड़ में लपेटकर पछाड़ देना और पैरों तले कुचल देना हाथी के लिए कुछ भी कठिन नहीं है। बाघ, चीते आदि अपनी दहाड़ से ही हिरन को डराकर भयाक्रांत कर देते हैं और उसे दबोच लेते हैं अन्यथा दौड़ में हिरन ही आगे रहेगा। उसकी छलाँग १० गज की होती है, जबकि शेर, चीते ६० गज से अधिक नहीं उछल सकते। भेड़िये, लोमड़ी, खरगोश को दौड़ में नहीं पकड़ सकते। वे धूर्तता से उन्हें घेरकर ही दबोचते हैं। खुले मैदान में यदि दौड़ने की प्रतिद्वंद्विता का सामना करना पड़े तो भेड़िये हताश हो जाते

हैं। पहले ही झपट्टे में यदि उनका दाव न लगा तो पीछा करना छोड़ देते हैं और वापस लौट आते हैं।

## स्नेह सहानुभूति सीखें

बंदर के जीवन में स्नेह और सहानुभूति का वर्णन करते हुए सुप्रसिद्ध जीवशास्त्री बेट्स एक घटना का उदाहरण देते हुए लिखते हैं—"एक बार बंदरों के एक उपनिवेश में एक शिशु बंदर बीमार पड़ गया। दिन भर दूसरे बंदर तो इधर-उधर उछलते-कूदते रहे, किंतु एक बंदरिया अपने बच्चे को छोड़कर कहीं नहीं गई। संभवतः अन्य बंदरों के साथ अपने दल में उसे न पाकर किसी बंदर का ध्यान उधर गया होगा। वह खोजता हुआ बंदरिया के पासा पहुँचा। हाथ पकड़कर और सूँघकर उसने वास्तविकता का पता लगाया। अपने दल में लौटकर उसने न जाने किस विचित्र खीं-खीं की आवाज में सभी सदस्यों को बात बताई। उनका राजा तुरंत उठकर बंदरिया के पास गया। कई बंदर इधर-उधर से फल तोड़कर लाए। सभी बंदर उस बंदरिया के किनारे उसे घेरकर बैठ गए। इसके बाद बच्चा जब तक स्वस्थ नहीं हो गया, उसके पास कुछ-न-कुछ बंदर बैठे ही रहे। परस्पर आत्मीयता का यह उत्कृष्ट उदाहरण था, जो सृष्टि के अबुद्धिमान मानवेतर प्राणियों में भी पाया जाता है।"

कृतज्ञता मनुष्य जाति का एक ऐसा गुण है कि यदि लोग दूसरे लोगों के उपकार, उनकी सेवाओं के प्रति थोड़ा-सा भी श्रद्धा और सम्मान का भाव रखें तो संसार से कलह और झगड़ों की ९० प्रतिशत जड़ तुरंत नष्ट हो जाए। कृतज्ञता आत्मा की प्यास और उसकी चिरंतन आवश्यकता है। लगता है यह आदर्श भी मनुष्य को अन्य जंतुओं से ही सीखना पड़ेगा। मासिक कल्याण के अंक में कृतज्ञता की एक बहुत ही मार्मिक घटना छपी थी। एक डाकिया प्रतिदिन डाक लेकर जंगल से गुजरता था और दूसरे गाँव डाक बाँटने जाया करता था। एक दिन उसने देखा पेड़ की एक डाल में छोटे-से छेद से निकलने के प्रयास में एक बंदर फँस गया है। दूसरे

बंदर कें-कें तो कर रहे थे, आपत्ति ग्रस्त बंदर भी बुरी तरह चिल्ला रहा था, किंतु संकट से छूटना उसके लिए संभव नहीं हो पा रहा था। इसी बीच डाकिया उधर से निकला। उसे बंदर की यह दशा देखकर दया आ गई। उसके पास कुल्हाड़ी थी। पहले तो वह कुछ भयभीत हुआ, पर पीछे उसने अनुभव किया कि जब मैं भलाई करना चाहता हूँ, तो बंदर बुराई क्यों करेंगे? वह वृक्ष पर चढ़ गया और सावधानी से छेद बड़ा कर उसने फँसे हुए बंदर को बाहर निकाल लिया। बंदर बड़ी खुशी-खुशी वहाँ से चले गए। उन्होंने डाकिए को न डराया और न काटा। डाकिया अपनी राह चला गया।

एक सप्ताह भी नहीं बीता था कि एक दिन उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि ठीक उसके आने के समय वहाँ बीसियों बंदर रास्ते के इधर-उधर बैठे हैं। पहले तो डाकिया डरा, पर चूँकि कुल्हाड़ी हाथ में थी, इसलिए वह निःशंक चला ही गया। जैसे-जैसे वह आगे बढ़ा बंदर इकट्ठे होते गए और डाकिया डरता गया, किंतु पास पहुँचकर उसे आश्चर्य हुआ कि ये सभी बंदर अपने-अपने एक-एक हाथ में जंगली प्रदेश में पाया जाने वाला एक-एक लाल रंग का दुर्लभ फल लिए हुए हैं। डाकिए के पास आते ही उन सबने उसे घेर लिया और अपने-अपने फल उसके हाथ में देकर पल भर में इधर-उधर तितर-बितर हो गए। डाकिए की आँखों में आँसू आ गए। उसने अनुभव किया आखिर यह जीव भी तो आत्मा ही है। यदि मनुष्य जीवमात्र के प्रति दया का व्यवहार करे तो संसार स्वर्ग बन जाए, और नहीं तो कृतज्ञ तो एक-दूसरे के प्रति होना ही चाहिए।

श्री सुरेशसिंह लिखित पुस्तक 'जीव-जगत' में मगर के गुणों का वर्णन करते हुए लिखा है कि उदारता के गुणों से तो यह धोखेबाज और मक्कार जीव भी रिक्त नहीं। जलाशय में घूमते-घामते, शिकार आदि खाने के बाद कई बार जब वह बाहर निकलता है तो अपना मुँह खोलकर लेट जाता है। पास-पड़ोस के पक्षी उसके दाँतों और मुँह में लगे चारे को देखकर दौड़ पड़ते हैं और मुँह में

घुसकर, दाँत कुरेद-कुरेदकर आहार ग्रहण करने लगते हैं। मगर चाहे तो मुँह बंद करके उन्हें एक बार में गड़प कर सकता है, किंतु ऐसा पाप उसे भी पसंद नहीं। शरणागत पक्षियों की सेवा वह तब करता है, जब तक कि पक्षी अपने आप न उड़ जाएँ। इस बीच मगर धोखे से भी मुँह बंद नहीं करता।

बाघ बड़ा उत्पाती जीव है। भूख लगने पर प्रकृति-प्रेरणा से उसे आक्रमण भी करना पड़ता है, किंतु उस जैसा एकनिष्ठ पतिव्रत और पत्नीव्रत देखते ही बनता है। अपना अधिकांश जीवन जंगलों में व्यतीत करने वाले जंगली जानवरों की प्रवृत्तियों को समीप रहकर अध्ययन करने वाले डॉ० स्टेफर्ड ने एक बहुत ही रोचक घटना दी है। दक्षिण अफ्रीका के जंगल में एक बाघ ने अभी कुछ ही दिन पूर्व अपना जोड़ा चुना था। बाघिन वधू बीमार पड़ गई और उसी अवस्था में एक दिन उसकी मृत्यु भी हो गई। उस जंगल में और भी अनेक बाघ कुमारियाँ उसे मिल सकती थीं, किंतु उस बाघ ने फिर किसी को अपना साथी नहीं चुना। बहुत दिन पीछे उसे एक ऐसी मादा मिली जो स्वयं भी एकाकी जी रही थी। उसके पति का संभवत: देहावसान हो गया था। दोनों विधुरों ने अपना युगल फिर से स्थापित कर लिया, पर सामान्य स्थिति में वे सदैव एकनिष्ठ ही रहते हैं। कोई भी जोड़ा एक-दूसरे को बुरी दृष्टि से नहीं देखता होगा, किंतु अपनी सच्चरित्रता के कारण वह सशक्त और समर्थ भी इतना होता है कि जंगल के दूसरे जीव उसको दूर से ही नमस्कार करते हैं।

स्वास्थ्य के लिए दुनिया भर की ओषधियाँ, टॉनिक और तरह-तरह के संतुलित आहार खोजने वाले मनुष्य चाहें तो घोड़े को देखकर जान सकते हैं कि शक्ति अधिक संख्या के व्यंजनों में नहीं, रूखे-सूखे भोजन में है। घास खाने वाले एक जर्मनी के घोड़े को १० वर्ष तक केवल सूखी हरी घास दी गई और उसे किसी भी प्रकार सहवास से अलग रखा गया। अरबी नसल के इस घोड़े को परीक्षण के तौर पर एक-एक कर ऊपर तक पत्थर के कोयले से भरे पाँच

बैगनों के साथ जोड़ दिया गया। उस घोड़े ने एक मील तक खींचकर अपनी अद्वितीय सामर्थ्य का परिचय दिया।

मनुष्य विश्वासघात करता है तो यह देखकर लज्जा आती है कि जीवन भर दूसरों का बोझा ढोने वाले बैल जिनमें बुद्धि और विवेक के नाम पर कुछ भी तो नहीं होता, वे परस्पर ऐसी प्रगाढ़ मैत्री का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं कि दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। डॉ० मूर ने हैंबर्ग के एक जोड़ी बैलों का हृदयस्पर्शी वर्णन 'दो बैलों की कहानी' नामक सत्य घटना में दिया है और लिखा है कि एक किसान के ये दोनों बैल काम तो साथ करते ही थे, खाने-पीने से लेकर यात्रा करने तक सदैव साथ रहते थे। कभी-कभी उन्हें अलग होना पड़ता, तो दोनों तब तक भोजन नहीं करते थे, जब तक कि दूसरा नहीं आ जाता। एक दिन अचानक एक बैल एक खंदक में गिर गया। वह निकल तो आया, पर उसके चारों पैर टूट गए। उसकी मरहम पट्टी की गई। वह बीमार भी हो गया। चिकित्सा के इन दिनों में दूसरे ने एक भी तिनका मुँह में नहीं दिया। बीमारी दस दिन तक चली, दस दिन पीछे लूला बैल संसार से चल बसा। इतने दिन कुछ भी न खाने-पीने के कारण दूसरा बैल भी दुर्बल हो गया था। किसान ने आटा-चून, दलिया सब कुछ देकर आकर्षित करने का प्रयास किया; किंतु उस बैल ने खाना तो दूर, जिस दिन पहला बैल मरा, जल भी छोड़ दिया और तीन दिन पीछे उसने भी इस संसार से विदा ले ली।

लोगों को असीमित साधन जुटाते देखकर लगता है कि मनुष्य कृत्रिम साधनों की बदौलत ही जी रहा है। कदाचित ये साधन न मिलें तो उसका जीवित रहना दूभर हो जाए, किंतु जीव-जंतु अपवाद हैं और उनकी जीवन शैली यह बताती है कि यदि प्राकृतिक जीवन जिया जाए तो ऐसी क्षमताएँ अपने आप अंदर से उपज पड़ती हैं, जो कठिन-से-कठिन विपरीत परिस्थितियों में भी मनुष्य का कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं। ऊँट एक अच्छा उदाहरण है। वह एक बार में ७०

लीटर तक पानी पी जाता है, पर फिर कई-कई दिन तक पानी न भी मिले तो भी उसे कोई कष्ट नहीं होता, उसकी घ्राणेंद्रिय इतनी सूक्ष्म होती है कि वह केवल सूँघकर ही पानी का पता लगा लेता है।

छोटे-छोटे अभावों का रोना रोने वाले आदमियों के लिए दीमक ही योग्य शिक्षक है। जन्म से ही अंधे यह छोटे-छोटे जीव, जीवन भर अविराम काम करते हैं और ऐसे विलक्षण काम करत हैं कि देखकर आश्चर्य होता है। १० से १३ फुट तक ऊँचे मकान उठाना इन्हीं का काम है, उन पर वर्षा, आँधी, तूफान और ऊपर से वृक्ष कटकर गिर पड़े तो भी इनका कुछ बिगड़ेगा नहीं। पुलों के निर्माण से लेकर सड़कें बनाने और सारे दीमक राज्य को अनुशासन एवं नियम-व्यवस्था में रखने का उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य वे पूरा करके मनुष्य को बताती हैं कि अनुशासन, नियमबद्धता और तत्परतापूर्वक काम किया जाए तो संसार का छोटा-से-छोटा व्यक्ति भी असाधारण कार्य संपादित कर सकता है।

इस स्तर की स्नेह-सहानुभूति अन्य प्राणियों में प्रचुरता से मिलती हैं। संभवतः यही कारण है कि अन्य जीवों को प्रकृति के अनुदान अधिक मिले हैं कि जीव-जंतु उसकी प्रेरणाओं का अनुगमन करते हैं।

## प्रकृति के अनुदान

जिस ज्ञान पर मनुष्य गर्व करता है और उसके आधार पर अपने को संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी समझता है, उसी क्षेत्र में कई प्राणी मनुष्य को काफी पीछे छोड़ चुके हैं। उदाहरण के लिए वनस्पतियों का ज्ञान पशु-पक्षियों से अधिक एक आयुर्वेदाचार्य भी नहीं रखता। वे देखते अथवा सूँघते ही पहचान लेते हैं कि अमुक वनस्पति विषैली अथवा स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, जबकि मनुष्य उन्हें बड़े-बड़े प्रयोगों के आधार पर ही पहचान पाता है। यदि ऐसा न हो तो बीहड़ जंगलों में जहाँ हितकर तथा अहितकर वनस्पतियाँ एक-दूसरे के पास ही नहीं, एक-दूसरे से लिपट-चिपटकर आती

हैं, वे अपनी गुजर कैसे कर सकें। शीघ्र ही अज्ञानवश कोई विषैली वनस्पति खाकर जीवन खोते रहते, जबकि न तो उनके लिए कोई मेडीकल कॉलेज ही खुले हैं और न कोई आयुर्वेदाचार्य उन्हें इस ज्ञान की शिक्षा देने जाता है। इस प्रकार इन साधारण बातों में देख सकते हैं कि पशु-पक्षी, बल, बुद्धि, विद्या, परिश्रम तथा शिल्प आदि में मनुष्यों से कहीं आगे हैं। तब इस आधार पर अपने को सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानना कहाँ तक न्याय संगत है।

कर्त्तव्य के संबंध में भी मनुष्य पशु-पक्षी की तुलना में कहाँ आते है। परमात्मा ने उन्हें जो भी थोड़े-बहुत, छोटे-मोटे कर्त्तव्य सौंपे हैं, उनका वे पूरी तरह से उत्साहपूर्वक निर्वाह करते हैं। वे नित्य नियम से प्रातःकाल जागते और अपनी-अपनी भाषा में परमात्मा का गुणगान करते हैं। दिन भर अपनी जीविका के लिए दौड़ते-घूमते तथा परिश्रम करते हैं और संध्या समय नियत समय पर अपने-अपने निवासों पर लौट जाते हैं। वे अपनी आजीविका आप तलाश करते हैं, न किसी की चीज पर निर्भर रहते हैं और न चुराने का प्रयत्न करते हैं। वे प्रकृति के विशाल प्रांगण से अपना आहार चुग आते हैं और दूसरों के लिए छोड़ आते हैं। न तो संग्रह करने की कोशिश करते और न चुराने अथवा छीन लाने की। हजारों पशु अपने नियत स्थान पर और न जाने कितने पक्षी एक ही पेड़, खेत अथवा मैदान में साथ-साथ खाते और मौज करते रहते हैं। न तो कोई किसी को भगाता है और न खाने से मना करता है। किसने कितना खा लिया इस ओर तो उनका कभी ध्यान ही नहीं जाता। यदि एक जाति के पक्षियों के बीच विजातीय पक्षियों का झुंड आ जाता है, तो वे उन्हें भी आहार ग्रहण करने का पूरा अवसर तथा स्वतंत्रता देते हैं।

कभी भी देखा जा सकता है कि जब कोई पशु-पक्षी कहीं आहार का संग्रह देख लेता है तो चुपचाप चोर की तरह खाने नहीं लगता, वह सबसे पहले अपनी भाषा में अपने सहचरों को बुला लेता है और तब सबके साथ मिलकर खाया करता है। आप कभी

भी किसी स्थान पर दाने डालकर देख सकते हैं कि जहाँ एक पक्षी ने देखा कि उसने दूसरों को पुकारना शुरू किया और थोड़ी ही देर में पंडुक, गौरैया, तोते आदि न जाने कितने पक्षी वहाँ पर जमा हो जाएँगे। लोग बंदरों को चना अथवा गेहूँ डालते हैं। वहाँ एक बंदर ने देखा नहीं कि उसने ऊहऊह करके आवाज देना शुरू किया और क्षेत्र के सारे छोटे-बड़े बंदर आकर उसका लाभ उठाते हैं। खाते समय भी कोई सबल कदाचित् ही किसी निर्बल को भगाता हो। नर एवं मादा का भी उनमें कोई अंतर नहीं देखा जाता।

अपने नीड़ में सुरक्षित ही क्यों न बैठा हो, किंतु खतरा देखते ही कोई भी पक्षी तत्काल चीख-चीखकर सबको उस खतरे के प्रति सावधान कर देता है। कभी भी देखा जा सकता है कि किसी बिलाव अथवा बाज को कोई ऐसा पक्षी देख ले, जो उनकी आँखों से ओट किए बैठा हो अथवा उनकी पहुँच से परे हो और उनका खतरा किसी अन्य पक्षी का ही क्यों न हो तथापि यह विचार किए बिना कि बाज या बिलाव उसे देख लेगा, वह चीख-चीखकर अपने साथियों को सजग कर देता है। गिलहरी बिल्ली के देखते ही किर-किर करती हुई तब तक पेड़ पर दौड़ती रहती है, जब तक बिल्ली ही न भाग जाए अथवा सारी गिलहरियों के साथ पक्षी तक सजग एवं सतर्क नहीं हो जाते। किसी कारण से अभी लड़ चुकने पर भी पक्षी अथवा पशु खतरे से अपने उस द्वेषी को भी सावधान करने के अपने कर्त्तव्य से नहीं चूकता। पशु-पक्षी एक-दूसरे को, खुजलाते, सहलाते, चाटते तथा रोमों की कीट बीनते कभी भी देखे जा सकते हैं। ये सब देखकर स्पष्ट कहा जा सकता है कि सहायता, सहयोग तथा पारस्परिकता के आधार पर मनुष्य पशु-पक्षियों से किसी भी दशा में आगे नहीं है।

मजबूरी के कारण हिंस्र जीवों को छोड़कर अन्य कोई भी पशु-पक्षी मनुष्य को कभी भी कोई क्षति नहीं पहुँचाता, बल्कि मनुष्य ही उलटा अपने मनोरंजन के लिए पिंजड़ों में उन्हें बंदी कर

लेता है। स्वाद के लिए मारकर खा जाता है। काम लेने के लिए अपने अधीन बना लेता है। चमड़ा, हड्डी तथा चरबी के लिए उनका वध करता रहता है। मनुष्य पशु-पक्षियों को क्षुद्र मानता तथा उनके साथ उठ-बैठ नहीं सकता है। अपने से हीन मानता है, किंतु यह नहीं देखता कि पशु-पक्षी उसे कितना क्षुद्र तथा अविश्वासी मानते हैं। जंगली हिरन गायों के बीच जा सकता है, भैंसों तथा वन्य पशुओं के बीच चर सकता है, किंतु मनुष्य की छाया से भी घृणा करता है, उसे देखते ही दूर भाग जाता है। एक पक्षी बैल के सींग पर बैठ सकता है, उसकी आँख-नाक से लगी चीजों को निर्भयतापूर्वक अपनी चोंच से खा सकता है, शेर तक की पीठ पर बैठकर उसके रोओं के कीटाणु चुन सकता है, किंतु मनुष्य पर भूलकर भी विश्वास नहीं करता। दूर से ही इस अपने को दिव्य प्राणी कहने वाले को देखकर 'फुर' से उड़ जाते हैं। इस तुलना में तो सच पूछा जाए तो मनुष्य पशु-पक्षियों से गया बीता ही है।

कृतज्ञता तथा वफादारी में मनुष्य पशु-पक्षियों की तुलना ही नहीं कर सकता। आप किसी कुत्ते के बच्चे को पालिए। उसका प्रेमपूर्वक पालन कीजिए तो वह होश सँभालते ही रात-रात भर आपके घर की चौकसी करता रहेगा। जरा-सा खटका होते ही भूँक-भूँककर आपको सजग कर देगा। आपत्ति के समय प्राण देकर भी आपकी रक्षा करेगा। आपके आक्रमणकारी पर आपसे पहले ही आक्रमण करने जा पहुँचेगा। फिर भी इसके लिए वह आप पर कोई एहसान न दिखलाएगा। आपसे कोई विशेष सुविधा अथवा अच्छा भोजन नहीं माँगेगा। आप जो कुछ जूठा, सीठा, ताजा, बासी दे देंगे, उसे खाकर संतुष्ट रहेगा और कृतज्ञतापूर्वक आपके चारों ओर दुम हिलाता घूमेगा। आपके पैरों में प्रेम से लिपटेगा। न जाने कितने चेतक आदि स्वामिभक्त घोड़ों और हाथियों ने अपने पालनकर्त्ता की जान बचाने में अपनी जान गँवा दी और आज भी गँवा देते होंगे। कितने मनुष्यों के ऐसे उदाहरण मिल सकते हैं, जिन्होंने अपने

उपकारी पशु के लिए खतरा झेल लिया हो, उसकी रक्षा में जान खोई अथवा क्षति उठाई हो। इन सब बातों के होते हुए भी यदि मनुष्य अपने आप को पशु–पक्षियों से ऊँचा और सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानता है तो यह उसका दंभ ही कहा जाएगा।

हाँ, मनुष्य सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी तब माना जा सकता है, जब वह इन पशु–पक्षियों की विशेषताओं तथा गुणों से आगे–बहुत–आगे निकल जाए। उसमें इतने प्रेम, सहानुभूति, दया, करुणा, उदारता एवं संवेदना का विकास हो जाए कि परस्पर संघर्ष, शोषण, असहयोग, द्वेष, ईर्ष्या आदि के विचार तो दूर हो ही जाएँ, साथ ही संसार के अन्य पशु–पक्षियों तक पर भी उसका प्रभाव पड़े। वे मनुष्य को देखते ही प्रेम विभोर होकर अपनी–अपनी बोली में 'हमारा ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ आ गया' कहते हुए उसका स्वागत करने लगें और चारों ओर घेरकर अपना स्नेह तथा श्रद्धा व्यक्त करने लगें। अभी वह दिन दूर है, जब मनुष्य अपने को संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहलाने के योग्य होगा।

# अतींद्रिय क्षमताओं का आधार और विज्ञान

घटना इंग्लैंड के चेशायर नगर की है। यहाँ रहने वाली जिना व्यूचैंप जो एक सेक्रेटरी का काम करती थीं, एक दिन विक्टोरिया स्टेशन पर बैठी अपनी माँ से बात-चीत कर रही थीं। स्टेशन वे इसलिए आईं थीं कि उन्हें ट्रेन द्वारा मेन्स्टन सिटी जाना था और वहाँ से हवाई जहाज द्वारा 'कारेटा ब्रेवा'।

ट्रेन आने में अभी थोड़ी देर थी इसीलिए माँ-बेटी एकांत में बैठी बात-चीत कर रही थीं। अभी थोड़ा ही समय हुआ था कि एकाएक 'जिना' बोली—''माँ मुझे बार-बार डर लग रहा है और ऐसा लगता है कि मेरे अवचेतन मन में कोई कह रहा है कि यह यात्रा खतरे•से खाली नहीं है। मैं तो यह यात्रा नहीं करूँगी।''

माँ बोली—''बेटी! यह तेरा वहम है। तू तो व्यर्थ ही डर रही है। इस तरह का अंधविश्वास एक प्रकार का पिछड़ापन है, तुझे ना करते देखकर बड़ा असमंजस हो रहा है।'' इस पर जिना बोली—''माँ, तुम कुछ भी कहो, पर मुझे तो यह विश्वास है कि संसार अपनी प्रेरक सत्ता से रिक्त नहीं। मेरे अंत:करण में उठ रही दैवी स्फुरणा झूठ नहीं हो सकती?''

माँ ने बहुतेरा समझाया पर जिना ने एक न सुनी, वह फिर जाने के लिए तैयार ही नहीं हुई। माँ ने यात्रा अकेले ही की। यात्रा क्या थी, मौत का बुलावा था। कहते हैं संसार के प्राणियों की जन्म-मृत्यु का हिसाब रखने वाली कोई सत्ता है, जिसे यमराज कहते हैं, वे हर व्यक्ति को निश्चित समय पर मृत्यु के लिए प्रेरित कर देते हैं और संसार के पालक, पोषक, संरक्षक भगवान जिसे बचाना चाहते हैं,

मौत के मुँह से झपटकर बचा लेते हैं। कोई अनुभव करे या न करे कि संसार सचमुच सूक्ष्मशक्तियों के विधान पर चल रहा है। यहाँ प्रस्तुत की जा रही घटनाएँ इस बात की पुष्टि करती हैं।

जिना को घर लौटे ४-५ घंटे ही हुए थे, तभी 'अरजेंट' (द्रुतगामी) तार आया। अब तक जो मात्र प्रेरणा और आशंका थी, वह सच निकली। तार में सूचना थी कि आपकी माँ श्रीमती व्यूचैंप जिस जहाज से कारेटा ब्रेवा जा रही थीं, परफिगनान (फ्रांस) के पास गिरकर नष्ट हो गया और आपकी माँ की मृत्यु हो गई। इस विमान दुर्घटना में विमान में सवार एक भी व्यक्ति नहीं बचा। जिना को अंतिम समय प्रेरणा और कार्यक्रम का परिवर्तन क्या किसी भूत और भविष्य को जानने वाली मनुष्य से उच्च सत्ता का काम नहीं है।

ड्यूक विश्वविद्यालय में परामनोविज्ञान से संबंधित एक स्त्री से संबंधित घटना इस प्रकार है :—

"दूसरा महायुद्ध प्रारंभ हो चुका था। तब मेरे पति को स्नायु सन्निपात (नर्वस ब्रेक डाउन) हो गया। वे घर से लगभग ५० मील दूर एक चिकित्सालय में चिकित्सा करा रहे थे। हम दोनों प्रतिदिन एक-दूसरे को पत्र लिखते। एक दिन शाम को मैं अपने ड्राइंगरूम में अकेली बैठी थी। आठ बजने वाले थे कि एकाएक मुझे बेचैनी होने लगी। बहुत प्रयत्न करने पर भी व्यग्रता बढ़ती ही गई। इस अनायास परिताप का कारण समझ नहीं पा रही थी। मुझे ऐसा लगा, जैसे मुझे कोई टेलीफोन की ओर आकर्षित कर रहा है। मुझे ऐसा लगा कि अपने पति को टेलीफोन करूँ, इसी गरज से टेलीफोन के पास तक चली गई। मुझे अनावश्यक फोन करने की मनाही कर दी गई थी, इसलिए आस-पास चक्कर तो काटती रही, पर फोन न कर सकी और फिर चुपचाप लौट आई।

दूसरे दिन पति के दो पत्र आए। एक तो प्रतिदिन लिखा जाने वाला पत्र था, जो नियमित रूप से आता था। दूसरा उससे पहले

लिखा गया था और उसमें पतिदेव ने मुझसे ठीक आठ बजे फोन पर बात-चीत करने को लिखा था। मैं आठ बजे टेलीफोन पर तुम्हारी व्यग्रता से प्रतीक्षा करता रहा। मुझे बहुत बेचैनी रही।''

गेटे ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि एक बार वह अपने निवास स्थान वाइम्नर में था, तो अचानक तीव्र अनुभूति हुई कि वहाँ से हजारों मील दूर सिसली में एक भयंकर भूकंप आया है। यह बात उसने अपने मित्रों को बताई, पर किसी को विश्वास न हुआ कि बिना किसी आधार के इतनी दूर की बात इस प्रकार कैसे मालूम हो सकती है ? कुछ दिन बाद आए समाचारों से पता चला कि ठीक उसी समय वैसा ही भूकंप सिसली में आया था, जैसा उसने अपने मित्रों को बताया था।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डॉ० केन गार्डनर की सहजानुभूति के रहस्य पर बड़ी जिज्ञासा है। उन्होंने ऐसी सैकड़ों घटनाएँ एकत्रित की हैं, जो भूत या भविष्य की जानकारी देती हैं और बाद में उनके सत्य होने का प्रमाण मिलता है। इन घटनाओं को उन्होंने दुनिया के अनेक अखबारों में छपाया है। लंदन में रोनाल्ड आर्थर नामक एक व्यक्ति ट्रोव ब्रिज के जार्ज होटल में नाश्ते के लिए गया। वहाँ जाने का एक आकर्षण यह भी था कि उस होटल में एक ऐसी लड़की रहती थी, जो लोगों का भविष्य बता सकती थी।

रोनाल्ड आर्थर को उसने बहुत-सी बातें बताईं, जो भविष्य से संबंधित थीं। वह जितनी ही सत्य थीं, रोनाल्ड की जिज्ञासा उतनी ही बढ़ती गई। लड़की एकाएक रुक गई, तो उन्होंने पूछा— ''आगे मेरा भविष्य में क्या होगा ?'' तो लड़की बोली—''दुर्भाग्य कि नवंबर के बाद आपका कोई भविष्य ही नहीं है।'' यह कहकर वह वहाँ से चली गई। सचमुच उसी वर्ष नवंबर में रोनाल्ड की मृत्यु हो गई।

ड्यूक यूनिवर्सिटी कैरोलाइना (अमेरिका) के प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो० जे० बी० राइन ने भी इस तथ्य को माना है कि कोई एक महान

सत्ता (सुपर पावर) है, जो मानवीय चेतना की तरह ही है और यदि मनुष्य उसका विकास कर ले, तो वह आगत-अनागत की इन सब बातों को सहज ही जान सकता है, जो साधारण अवस्था में कभी कल्पना में भी नहीं आतीं।

मनोगतिशीलता वस्तुतः शरीर या किसी शारीरिक ऊर्जा से संबंध नहीं रखती। उसका संबंध प्राण और संकल्प (सूक्ष्मशरीर) से रहता है, पर उसकी शक्ति अपरिमित होती है, शाप और वरदान तक उससे सफल होते देखे जाते हैं। एक बार दक्षिणेश्वर के काली मंदिर में भक्तों के एक मेले में रानी रासमणि भी सम्मिलित हुईं। रानी से दक्षिणेश्वर मंदिर को बहुत धन मिलता था। स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने सहसा उन्हें जोर का तमाचा मार दिया, तो उनके अंगरक्षक बहुत नाराज हुए, पर रानी ने उन्हें शांत करते हुए स्वीकार किया कि उन्हें ऐसे पवित्र स्थान में जो बात नहीं सोचनी थी, वह सोच रही थीं। उसे रामकृष्ण परमहंस किस प्रकार जान गए, इसे तब बड़ी आश्चर्य की दृष्टि से देखा गया, पर अब परामनोविज्ञान इसे मन की संकल्प सिद्धि का छोटा-सा चमत्कार मानता है। स्वामी विवेकानंद ने सिस्टर निवेदिता को इसी तरह अपनी मृत्यु का पूर्व ज्ञान करा दिया था।

स्वामी शिवानंद ने एक बार एक ग्रामीण की जो उन्हें दूध पहुँचाने आता था, एक साँप से रक्षा की। जब वह स्वामी जी के पास पहुँचा, तो उन्होंने आते ही पूछा—"साँप ने कहाँ काटा?" वह व्यक्ति यह सुनकर आश्चर्यचकित रह गया। रास्ते में साँप ने जहाँ काटा था, वह स्थान दिखाया और स्वामी जी ने मंत्रबल से उसे अच्छा कर दिया।

इन घटनाओं से सिद्ध होता है कि हमारे अंतःकरण और मन में उठा कोई भी भाव या विचार नष्ट नहीं होता, वरन वह संबंधित व्यक्ति तक पहुँचता है और भावनाएँ जितनी हार्दिक और प्रखर होती हैं, उतनी ही तेजी से प्रभावित और प्रेरित भी करती हैं। देव उपासनाओं

से मिलने वाला अनुग्रह और प्रार्थना से मिलने वाला आशीर्वाद भी इसी तरह होता है। उससे अधिक अतींद्रिय ज्ञान से जीवन की अमरता सिद्ध होती है।

वह इस तरह कि जब हम स्वप्नावस्था में होते हैं तो भी इंद्रियातीत ज्ञान की अनुभूति होती रहती है। ऐसा लगता है, जैसे हम प्रत्यक्ष शरीर से चल-फिर, उठ-बैठ और क्रियाएँ कर रहे हों। उस समय की कितनी ही अनुभूतियाँ इतनी सच्ची निकलती हैं कि आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। अपने पति की हत्या से पूर्व ही राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन की पत्नी ने एक सुस्पष्ट स्वप्न में अपने पति की मृत्यु का दृश्य देखा था।

पौराणिक कथा है कि भरत ने कई दिन पूर्व ही अयोध्या में होने वाले विग्रह और दशरथ की मृत्यु का भविष्य दर्शन स्वप्न में किया था। प्राचीन टेस्टामेंट की एक घटना से यह भी सिद्ध होता है कि इस तरह का इंद्रियातीत ज्ञान जाग्रत अवस्था में भी हो सकता है और किसी को विचार संचार भी किया जा सकता है। एक बार राजा बेलसज्जार अपने मेहमानों के साथ भोजन के लिए बैठे, तभी उन्हें किसी के हाथ ऊपर उठते और उँगली से दीवार पर कुछ शब्द लिखे दीखे। भविष्यवक्ता डेनियल ने उक्त सारी घटना की व्याख्या करते हुए बताया, "राजा का राज्य और अस्तित्व खतरे में है।" वैसा ही हुआ भी। प्रातःकाल होने से पूर्व ही सम्राट की हत्या कर दी गई और डोरिस नाम के एक उच्च पदाधिकारी ने राज्य सत्ता पर अपना अधिकार कर लिया।

अपने भावों को व्यक्त करने के लिए जब आत्मा को बोलने की इच्छा होती है, तो वह बुद्धि द्वारा अर्थों को संग्रहीत कर मन को इस कार्य के लिए प्रेरित करती है। मन शरीरस्थ अग्नि द्वारा प्राण-वायु को गरम करके उसे अपने प्रयोजन के लिए गतिमान करता है। नाभि प्रदेश से उठता हुआ, यह वायु छाती (उरस) आदि स्थानों में से उत्क्रमण कर कंठ प्रदेश में पहुँचता है।

उपर्युक्त प्रक्रिया वायु और आकाश तत्त्वों से मिलकर कंपन करती है। इन ध्वनि कंपनों को अभ्यांतर प्रयत्नों से किसी के भी पास पहुँचाया जा सकता है।

## चंद्र यात्रा में एक प्रयोग

अपोलो १४ अंतरिक्षयान के तीन सदस्यों में से एक थे—एडगर मिचेल। उन्होंने अपनी यात्रा के साथ-साथ एक व्यक्तिगत परीक्षण भी सम्मिलित रखा। क्या पृथ्वी की आकर्षण शक्ति के बाहर भी विचार संचालन का क्रम चल सकता है? क्या टेलीपैथी अंतर्ग्रही आदन-प्रदान का माध्यम बन सकती है? क्या लोक-लोकांतरों के निवासी परस्पर विचार-विनिमय कर सकते हैं? यदि ऐसा संभव हो सके, तो इसे चेतना के क्षेत्र में एक बहुत बड़ी उपलब्धि कहा जाएगा।

मिचेल ने चंद्र यात्रा की लंबी उड़ान में पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से बाहर निकलने के बाद अपने कुछ मित्रों के साथ टेलीपैथी के आधार पर विचार-विनिमय किया। कुछ संदेश भेजने और कुछ पाने के लिए समय निर्धारित रखा, जो उन्होंने भेजा, उसे उनके मित्रों ने और जो मित्रों ने भेजा उसे उन्होंने ग्रहण किया। लौटने पर लेखा-जोखा लिया गया, तो उसमें शत-प्रतिशत तो नहीं, पर बड़ी मात्रा में यथार्थता पाई। श्री मिचेल ने इस संदर्भ में अपना अभिमत व्यक्त करते हुए कहा—"यह स्थापना हो चुकी है कि टेलीपैथी एक यथार्थता है। उसकी शोध उसी प्रकार होनी चाहिए जिस प्रकार अन्य वैज्ञानिक तथ्यों की होती है।"

अब वे दिन लद गए, जिनमें यह कहा जाता था कि मस्तिष्क में इंद्रिय छिद्रों के अतिरिक्त अन्य किसी माध्यम से ज्ञान का प्रवेश नहीं हो सकता। प्लेटो की मान्यताएँ ऐसी ही थीं, पर अब वैसा कोई नहीं कहता—ई० सी० पी० के विद्युताग्र मस्तिष्क को असाधारण रूप से प्रभावित करते हैं। उस सफलता के आधार पर यह वायदा किया जाने लगा है कि बिना सर्जरी के ही अमुक विचार प्रवाह से

किसी के या किन्हीं के मस्तिष्क की स्थिति बदली जा सकेगी। उसे अपनी मान्यताएँ बदलने, चिंतन की धारा बदलने और नए किस्म का कुछ भी सोचने के लिए विवश किया जा सकेगा। अब मस्तिष्क व्यक्तिगत संपत्ति न रहकर सार्वजनिक प्रयोग-परीक्षण का, क्रीड़ा-विनोद का क्षेत्र बनता जा रहा है। पार्क में सैर करने की तरह किसी के मस्तिष्क में भी अनिच्छित विचार प्रवेश कर सकते हैं और उन्हें स्थान देने के लिए किसी भी व्यक्ति को बाध्य किया जा सकता है।

## शब्द-वेधी बाण

तथाकथित पिछड़े हुए लोगों के हाथों में कभी-कभी ऐसी क्षमताएँ दृष्टिगोचर होती हैं, जिन्हें देखकर अवाक् रह जाना पड़ता है। अफ्रीकी और आस्ट्रेलियाई जनजातियों में अभी भी कई ऐसे करतब देखे जा सकते हैं, जिनका कारण आधार और अभ्यास समुन्नत और क्रियाकुशल समझे जाने वाले लोगों के लिए भी एक पहेली ही बना हुआ है। आस्ट्रेलिया के वनवासियों की भोजन समस्या को हल करने का आधार 'बूमरैंग' अस्त्र उस क्षेत्र के बच्चे-बच्चे के अभ्यास में आया हुआ है। यह हस्त-कौशल एवं बुद्धि-कौशल से चलने वाले हथियार बंदूक को भी पीछे छोड़ता है और शब्दवेधी की उन दंत कथाओं को सत्य सिद्ध करते हैं, जिनमें लक्ष्य वेधन के उपरांत तीर फिर से प्रयोगकर्त्ता के तरकस में स्वयं ही वापस आ जाता था।

इंग्लैंड की महारानी एलिजाबेथ द्वितीय और उनके पति ड्यूक आफ एडनवरा सन् १९५४ में आस्ट्रेलिया के दौरे पर गए। शाही अतिथियों के सम्मान में आयोजित एक समारोह में इस देश के आदिवासियों द्वारा प्रयुक्त होने वाले 'बूमरैंग' अस्त्र के आश्चर्यजनक करतब दिखाए गए, जिन्हें देखकर महारानी मंत्रमुग्ध रह गई और प्रदर्शनकारी जोटंबरी की मुक्त कंठ से प्रशंसा की और उस शस्त्र संचालन को कई बार देखा।

'बूमरैंग' एक विचित्र प्रकार का हथियार है। उसकी लंबाई डेढ़ से तीन फुट तक की होती है। इस रहस्यमय अस्त्र के बनाने का ढंग भी बड़ा विचित्र है। दोनों सिरे एक समान नहीं होते, फिर भी उनका वजन समान होता है। एक सपाट दूसरा लगभग गोल। एक कुछ इंच छोटा दूसरा बड़ा। किनारों पर लोहे के नुकीले तथा तेज धार वाले फल लगे होते हैं। उनकी बनावट में तिरछापन होता है। कीकर के पेड़ की एक गीली लकड़ी को काटकर उसे आग पर सेंकते हुए नरम करके बीच में से इच्छानुसार मोड़ लिया जाता है। बस तैयार हो गया 'बूमरैंग'। देखने में वह हँसिए जैसी सकल का मामूली-सा औजार लगता है, पर उसका प्रयोग इतना अद्भुत और चमत्कारपूर्ण है कि आज के बुद्धि-कौशल को उसने अपने ढंग से चुनौती ही दे रखी है।

'बूमरैंग' को एक प्रकार का शब्दवेधी बाण कहना चाहिए। वह प्रयोक्ता द्वारा हवा में उछाला जाता है। तीर की तरह सनसनाता हुआ ऊपर उड़ता है, अमुक ऊँचाई पर पहुँचकर मुड़ता है और एक विशेष कक्षा में चक्कर लगाता हुआ निर्धारित निशाने पर जा लगता है अथवा लौटकर चलाने वाले के पास ही वापस आ जाता है।

आस्ट्रेलिया के आदिवासी शिकारी इसी से पशु-पक्षियों का शिकार करके अपना पेट पालते हैं। दौड़ते हुए कंगारू पर सही निशाना साधना और कितनी देर में जानवर किस गति से कहाँ पहुँचेगा और उतने समय में बूमरैंग हवा में तैरता हुआ उस तक पहुँचने में कितना समय लेगा, यह हिसाब लगाना किसी शक्तिशाली कंप्यूटर के लिए ही संभव हो सकता है, पर आस्ट्रेलियाई आदिवासी इस कला में इतने निष्णात होते हैं कि उनके लिए दौड़ते-दौड़ते पशु-पक्षियों को इसी छोटे-से लकड़ी के टुकड़े की सहायता से मार देना बाएँ हाथ का खेल जैसा सरल होता है। वे पाँच मिनट में चलते-भागते कंगारू को धराशायी बना देते हैं। प्रायः सिर

पर चोट करना इस अस्त्र का लक्ष्य होता है। निशाना प्रायः कभी भी खाली नहीं जाता।

कभी-कभी इन आदिवासियों के प्रतियोगिता समारोह होते हैं। तब 'बूमरैंग' के करतब देखकर दाँतों तले उँगली दबाकर रह जाना पड़ता है। पेड़ के चारों ओर चक्कर काटकर फिर फेंकने वाले के हाथ में आ जाना अथवा पैर के आगे कुछ ही इंच जमीन में आधे फुट गहराई तक घुस जाना ऐसा खतरनाक प्रयोग है कि गलती होने पर फेंकने वाला भी प्राण गँवा सकता है। पर वे बचपन से ही अभ्यास करते हैं और युवा होने तक उस कला में पारंगत हो जाते हैं। इस अस्त्र की सारी विशेषता उसकी लकड़ी तथा फलों के भार तथा तिरछेपन के साथ जुड़ी हुई विशेषताओं में सन्निहित रहती है। अब से सौ वर्ष पूर्व यह अस्त्र प्रायः पाँच फुट लंबा होता था, वह निशाना तो ठीक लगाता था, पर लौटकर प्रयोक्ता के पास वापस नहीं आता था, पर अब उनमें उन लोगों ने आवश्यक सुधार कर लिए हैं और इस योग्य बना लिया है कि बढ़िया बंदूकें भी उसका मुकाबला न कर सकें।

महारानी एलिजाबेथ के सामने लंगोटीधारी वनवासी जोटंबरी ने जब 'बूमरैंग' फेंका तो वह एक सौ बीस फुट तक सीधा तीर की तरह गया। फिर एक सेकंड के लिए रुका और देखते-देखते ९० अंश का कोण बनाता हुआ आकाश में १०० फुट ऊँचा उड़ा। फिर वहाँ उसने अपने आप कई चक्कर लगाए और फिर पीछे मुड़कर वह फेंकने वाले की ओर आ गया। अस्त्र सिर के समीप आ चुका था कि जोटंबरी ने अपना एक पैर उछाला और उसी से 'बूमरैंग' को पकड़ लिया। यह सारा दृश्य ऐसा लगता था मानो कोई वायुयान किसी प्रशिक्षित पायलेट के कुशल संचालन में सारे करतब दिखा रहा हो। ऐसे कई प्रयोग उसने दिखाए और बताया कि यह कोई नट विद्या नहीं, वरन उसकी जाति के लिए जीवन-मरण जैसा आवश्यक अभ्यास है।

## क्षमताओं की जाग्रति

इस तरह की क्षमताएँ विशेष अभ्यासों द्वारा जाग्रत की जा सकती हैं। ये होती तो प्रत्येक मनुष्य में हैं, पर अधिकांश व्यक्तियों में सुप्त स्थिति में ही रहती हैं। इन क्षमताओं को जाग्रत करने के लिए अनेक प्रकार के साधन-विधान हैं। उन सबका आधारभूत सिद्धांत अपनी मनःस्थिति और आत्मिक स्तर को क्रमशः परिष्कृत, परिपक्व तथा उन्नत करते चलना है। जापान में बौद्ध धर्म की एक शाखा है, जिसके अनुयायी जैन कहे जाते हैं। संभव है भारत में प्रचलित जैन धर्म का इस शाखा पर प्रभाव रहा है और इसका वैसा ही नामकरण किया गया है।

इस संप्रदाय के अनुयायी ध्यानयोग पर बहुत आस्था रखते हैं और अपनी आस्था इस हद तक सुदृढ़ करते हैं कि उन्हें कठिन तितिक्षाजन्य कष्ट सहने में भी दुःख का अनुभव नहीं होता। एकाग्रता की गहराई इस हद तक वे लोग विकसित करते हैं कि बाह्य कष्टों के सहन करने की तपश्चर्या उन्हें अपने साधना क्रम से विचलित न कर सके।

दक्षिण जापान के कई बौद्ध मंदिरों में ऐसे धर्मानुष्ठान होते हैं, जिनमें छह फुट लंबी दहकते हुए कोयलों से सजाई हुई वेदी पर नंगे पैरों चलकर उसे पार करना पड़ता है। पुरोहित आगे चलता है और अनुयायी पीछे। जो लोग इस रास्ते को हँसते हुए पार कर लेते हैं, वे सच्चे जैन विश्वासी माने जाते हैं।

ऐसी अग्नि परीक्षा मलेशिया के कई क्षेत्रों में धर्मानुष्ठानों के रूप में प्रचलित है। होली के अवसर पर भारत के कई स्थानों पर पुरोहित लोग जलती हुई ऊँची लपटों में होकर नंगे पाँवों और नंगे शरीर निकलने का प्रदर्शन करते हैं।

सर्प जैसे क्रोधी और स्नेहशून्य प्राणी को मनुष्य का परम सहयोगी और विश्वस्त बना लेना असामान्य तथा कठिन ही दीखता है और सिंह-शावक, कुत्ते की तरह मनुष्य के पीछे फिरें यह भी

प्रकृति विरुद्ध है, फिर भी अनेक घटनाएँ ऐसी होती रहती हैं और बताती हैं कि मानवी चेतना अन्य प्राणियों की प्रकृति में भी परिवर्तन कर सकती है।

अंग्रेज साहित्यकार डी० एच० लारेन्स ने अपनी मैक्सिको यात्रा का सचित्र विवरण छपाते हुए उस देश के आदिवासियों—रेड इंडियनों से सर्प प्रेम की चर्चा की है और बताया है किस प्रकार वर्ष में एक बार वे भयंकर विषधरों के साथ मिलकर सर्प पूजा की परंपरा निभाते हैं।

यह सर्प पूजा वर्षा के प्रथम महीने में रविवार के दिन से आरंभ होती है और सोमवार की शाम तक चलती है। इसे देखने के लिए आदिवासी ही नहीं, सुशिक्षित गोरे भी अपनी मोटरें लेकर उस छोटी देहात में पहुँचते हैं। एक मेला-सा लग जाता है। इस मेले को दृष्टि में रखते हुए ही वहाँ तक पहुँचने के लिए एक कच्ची-पक्की सड़क भी बना दी गई है।

सर्प अनुष्ठान नवाजो प्रांत के आरिजोना रेगिस्तान से कोई ७० मील उत्तर की ओर 'वल्पि' गाँव में होता है। निर्धारित तिथि पर उपस्थित होने के लिए सुपरिचित सर्प गुफाओं में होषी कबीले के पुरोहित उन्हें निमंत्रण देने जाते हैं और उपस्थिति के लिए मंत्रोच्चारण पूर्वक अनुरोध करते हैं। यह क्रम प्रायः साल भर तक चलता रहता है कि वह निमंत्रण स्वीकार भी हो जाता है और निर्विष और विषधर सर्प बड़ी संख्या में उस आयोजन में सम्मिलित होने के लिए स्वेच्छापूर्वक सम्मिलित होते हैं।

यह सर्पानुष्ठान कोई मनोरंजन या मेला-तमाशा नहीं है। दर्शक उसे जो भी समझें, पर इसका आयोजन करने वाले होपी कबीले के आदिवासी सर्पों को सूर्य देवता का विशेष प्रतिनिधि मानते हैं और उन्हें इस पूजा समारोह में आमंत्रित करके परस्पर मैत्री पर घनिष्ठता की नई परत चढ़ाते हैं और उनके माध्यम से समस्त सर्प परिवार तक तथा सूर्य देवता तक अपनी शुभकामनाएँ भिजवाते हैं। उनका विश्वास

है कि न केवल मनुष्य वरन सभी प्राणी भाई-भाई हैं। यहाँ तक कि मनुष्य और सर्प में भारी प्रकृति भिन्नता होते हुए भी उनके बीच स्नेह-सौजन्य के संबंध बने रहने में कोई अड़चन नहीं है। रेड-इंडियन के यह विचार भारतीय धर्मानुयायियों से बहुत अंशों में मेल खाते हैं। अपनी इस मान्यता को हर वर्ष पुष्ट करते रहना भी इस धर्मानुष्ठान का एक प्रयोजन है।

लारेन्स के कथनानुसार परंपरागत स्थान पर, नियत दिन यह आयोजन होता है। इसमें प्रधान भूमिका निभाने वाले याजक नौ दिन तक उपवास करते हैं और पवित्र मंत्र जपते रहते हैं। निर्धारित समय पर वे अपनी विचित्र वेशभूषा में सर्प नृत्य आरंभ करते हैं। दर्शकों से कह दिया जाता है कि पूर्णतया मौन रहें अन्यथा आगंतुक सर्प भयंकर उपद्रव कर सकते हैं। दर्शक उस आदेश का पूर्णरूपेण पालन करते हैं।

पत्तों से ढके एक गड्ढे में न जाने कितने सर्प कब से छिपे बैठे होते हैं। अनुष्ठानर्त्ता मंत्रोच्चारपूर्वक उनमें से थोड़े सर्प पकड़कर लाते हैं। उन्हें गले में पहनते हैं, शरीर से लपेटते हैं, उनका मुँह अपने मुँह में दबाते हैं और विचित्र मुद्राओं में सर्प नृत्य करते हैं। इसमें नर्तकों के शरीर पर लिपटे हुए सर्प भी भाग लेते हैं और अपने अंगों को हिलाते-घुमाते हुए यह सिद्ध करते हैं कि उन्हें भी इस आयोजन के आयोजनकर्त्ताओं की तरह ही दिलचस्पी तथा प्रसन्नता है।

नर्तक लोग अपने साथ लिपटे हुए साँपों में से कुछ को जमीन पर छोड़कर उन्हें स्वतंत्र क्रीड़ा-कल्लोल करने देते हैं। कुछ को दर्शकों पर भी फेंक देते हैं, पर कभी कोई दुर्घटना नहीं होती।

देखने वाले तरह-तरह के अनुमान लगाते हैं और कहते हैं कि यह पाले हुए हैं, जहर निकाले हुए, बूढ़े, मद्य मूर्च्छित सर्प हैं। याजकों के पास कोई सर्प विष नाशक जड़ी-बूटी है, जिसे खाकर वे दंश की हानि से बचे रहते हैं। जो भी हो, सर्प इतने बलिष्ठ और

विषधर होते हैं, जिनकी जहरीली मार न सही, शारीरिक पकड़ भी किसी का कचूमर निकाल सकती है। फिर भी आमंत्रित सैकड़ों सर्पों में से एक भी इस तरह का उत्पात नहीं करता और ऐसा लगता रहता है, मानो मनुष्य और सर्प दोनों ही छोटे बालकों की तरह सौहार्द्रपूर्ण क्रीड़ा-विनोद कर रहे हैं।

अनुष्ठान के अंत में सायंकाल एक निर्धारित स्थान पर समस्त सर्पों को विसर्जित कर दिया जाता है और अपने संबंधित अन्य देव परिवार तक उनका अभिवादन पहुँचाने और बदले में सुख-शांति का वरदान भिजवाने की वे लोग भूमिका निभाते हैं। विदाई के समय सर्पों को अगले वर्ष फिर आने का निमंत्रण दिया जाता है और वे आते भी हैं।

मैसूर क्षेत्र के दक्षिण कनारा जिले का निवासी चालीस वर्षीय वेनारी वेंकटरमन कुछ समय पूर्व एक विचित्र प्रदर्शन के लिए प्रसिद्ध था। उसने अपनी दाढ़ी में मधुमक्खियों का छत्ता जमा रखा था, उसमें मक्खियाँ भली प्रकार जीवन निर्वाह करती थीं। दक्षिण कनारा के मधुमक्खी पालकों का एक सम्मेलन हुआ, उसमें वेंकटरमन को अध्यक्ष बनाया गया। उस सम्मेलन में मधुमक्खी पालकों के अतिरिक्त अधिक संख्या उन लोगों की थी, जो दाढ़ी में लगे हुए सफल मधुमक्खी छत्ते का विचित्र दृश्य आँखों देखने के लिए एकत्रित हुए थे।

मानसिक चेतना की नीची परतों में तो केवल इच्छा शक्ति, ज्ञानशक्ति और बुद्धिशक्ति जैसा लौकिक प्रयोजन सिद्ध कर सकने वाली सामान्य एवं विशिष्ट क्षमताएँ पाई जाती हैं, पर उसकी उच्चस्तरीय संकल्प शक्ति में वे क्षमताएँ विद्यमान हैं, जिसे चमत्कारी सिद्धियों के रूप में जब तक जहाँ-तहाँ देखा जाता है। यह सब भी अनायास ही नहीं, वरन क्रमबद्ध है। श्रद्धा और विश्वास के आधार पर परिपक्व हुआ अंतःकरण मनुष्य में वैसी अनेक विशेषताएँ पैदा कर सकता है, जिनमें से कुछ की चर्चा ऊपर की गई है।

## समर्थ सत्ता का अनुदान

विज्ञानमयकोश की विशिष्ट क्षमताओं का एक केंद्र उच्च चेतन मन है। दूसरा एक और भी आधार है—प्राण विद्युत। यह एक चुंबक है, जो सांसारिक जीवन में प्रभावोत्पादक शक्ति एवं प्रतिभा के रूप में दृष्टिगोचर होता है। यह आकर्षण तत्त्व यदि अधिक सक्षम हो सके तो उसके माध्यम से कई तरह की ऐसी विशेषताएँ उत्पन्न हो सकती हैं, जिनसे व्यक्तित्व के उभरने के असाधारण अवसर उत्पन्न हो सकें। इस ऊर्जा में यह शक्ति भी है कि सूक्ष्म जगत के प्रवाहों को अपनी ओर मोड़ सकना और उनके संपर्क के कई महत्त्वपूर्ण कार्य सिद्ध करना भी संभव हो सकता है। साधक अपने व्यक्तित्व को साधना मार्ग पर चलते हुए, जिस प्रखरता को प्राप्त करता है, उससे भौतिक सफलताओं और आत्मिक सिद्धियों के उभयपक्षीय लाभ मिल सकते हैं।

मनःशक्ति जड़ जगत और चेतनसत्ता के बीच का एक घटक है, इसलिए ज्ञात जीवन में उसका सर्वोपरि महत्त्व है। जीव विज्ञान (जेनेटिक साइंस) की नवीनतम जानकारियाँ यह बताती हैं कि शरीर जिन कोशिकाओं से बना है, वह तथा शरीरगत परमाणु पूरी तरह मनःशक्ति के नियंत्रण में हैं। यही नहीं, वंशानुक्रम में भी वह गतिशील रहता है तथा मरणोत्तर जीवन में भी उसकी गतिशीलता समान रूप से बनी रहती है। फ्रायड के 'सुपर ईगो' और 'सेन्सस' की परिधि वाले मन को जर्मन मनोवैज्ञानिक हेन्सावेंडर अतींद्रिय क्षमता तक ले जाने में सफल हुए। इसके लिए उन्होंने अनेक प्रमाण तक उपलब्ध कराए। टेलेपैथी पर अत्यधिक खोज-बीन करने वाले रेगे बार्कोलियर ने कहा है—''मन की व्याख्या पदार्थ विज्ञान के प्रचलित सिद्धांतों द्वारा संभव नहीं।''

मस्तिष्क की स्थिति जीवनयापन के सामान्य क्रियाकलाप पूरे करने जितनी सीमित नहीं है, अपितु उसमें एक-से-एक

विलक्षणताएँ, संभावनाएँ प्रतीत होती हैं। वैज्ञानिक परमाणु में भार, घनत्व, विस्फुरण तथा चुंबकीय क्षेत्र आदि भौतिक परिचय देने वाले तत्त्वों की खोज करते हुए एक ऐसे सूक्ष्म विद्युतीय कण के संपर्क में आए हैं, जिनमें भौतिक परमाणु में पाए जाने वाले उपर्युक्त एक भी लक्षण नहीं। यह विद्युत कण शरीरों के पोले भाग तथा समस्त आकाश में निर्बाध विचरण करते हैं। ये भौतिक परमाणुओं को भी वेधकर पार निकल जाते हैं, पर अभी तक कोई ऐसी यंत्र प्रणाली या विज्ञान विकसित नहीं हो पाया, जो इन विद्युत कणों को कैद कर सके। जब तक वह पकड़ में न आएँ, उनकी अंत:संरचना का अध्ययन कैसे हो?

इन कणों की उपस्थिति का बोध भी उन्हीं के परस्पर टकराव की स्थिति में ही हो पाता है। गणित शास्त्री 'एड्रिया ड्राब्स' ने इनको 'न्यूटिनो' नाम दिया है। कुछ वैज्ञानिकों ने इसी तरह के कणों को 'साइन्नोन' नाम दिया है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि जब मस्तिष्क के 'न्यूरोन' कण विचारों और भावनाओं के प्रवाह के रूप में इन कणों से संपर्क स्थापित करते हैं तो उस क्षणिक संपर्क से ही पूर्वाभास जैसी घटनाओं की अनुभूति होती है। इससे दो सत्य उद्‌घाटित होते हैं। (१) पहला यह कि ब्रह्मांड व्यापी घटनाओं का मूल उद्‌गम एक है। यह उद्‌गम काल, दिशा और पदार्थ से अतीत है। संसार का नियमन और नियंत्रण इसी के अधिकार में है। (२) मानवीय चेतना का संबंध किसी-न-किसी रूप में इस उद्‌गम से निश्चित है।

न्यूट्रिनो कणों का मनुष्य की मस्तिष्कीय चेतना तथा तंतु समूह पर क्या और किस तरह का प्रभाव पड़ता है, इस पर गंभीर शोधें चल रही हैं। वैज्ञानिक 'एक्सेल फरसेफि' का कथन है कि यह कण जब मानसिक चेतना पर प्रभाव डालते हैं, तो नई जाति के 'माइंजेन' नामक ऊर्जा कणों का जन्म होता है। यह अनुमान है कि इस तत्त्व की व्यापक प्रक्रिया मस्तिष्क में चल पड़े तो मनुष्य सहज ही ब्रह्मांड-व्यापी ऊर्जा के साथ संबंध स्थापित करने लगेगा और अपनी ज्ञान-

परिधि को इतना असीम बना लेगा कि उसकी कल्पना करना भी कठिन हो। उस स्थिति में मनुष्य धरती की एक बंद कोठरी में ही वह सारे दृश्य फिल्म की भाँति देख सकेगा, जो चंद्रमा या मंगल पर जाकर कोई मनुष्य या उपकरण देख सकता है और उतना ही स्पष्ट।

इन समस्त अलौकिक क्षमताओं के केंद्र व्यक्ति-मस्तिष्क में विद्यमान है, किंतु वे केंद्र ही चेतना नहीं हैं। चेतनसत्ता उससे भिन्न और सर्वव्यापी है। व्यक्ति-मस्तिष्क उसकी अनुभूति और अभिव्यक्ति का माध्यम बन सकने में समर्थ है। कोट खूँटी पर टाँगा जा सकता है। खूँटी के गिर जाने पर उस पर टँगा कोट भी गिर जाएगा, किंतु इसका यह अर्थ नहीं कि खूँटी ही कोट है या कि कोट ही खूँटी है। मानव शरीर से निरंतर विद्युत चुंबकीय, इन्फ्रारेड, अल्ट्रावायलेट आदि विकिरण होते रहते हैं। इसी से विद्युत चुंबकीय क्षेत्र बनता है। शरीर के भीतर के कार्बन, पोटेशियम, सोडियम, रेडियम, थोरियम, स्वर्ण, सीसियम, कोबाल्ट, आयोडीन आदि तत्त्व विद्युत चुंबकीय क्षेत्र तथा अन्य क्षेत्रों के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। मनुष्य की संपूर्ण त्वचा से पीजोइलेक्ट्रिक इफेक्ट, पाइरोइलेक्टिक इफेक्ट, विद्युत चुंबकीय विकिरण आदि प्रसारित भी होते रहते हैं तथा बाहर के ऐसे ही विकिरणों एवं प्रभावों (इफेक्ट्स) को मनुष्य की त्वचा ग्रहण भी करती रहती है। इन्हीं विकिरणों तथा प्रभावों के फलस्वरूप क्वैंटम फील्ड तैयार होता है अर्थात इनकी समन्वित प्रक्रिया का क्षेत्र। उस क्षेत्र की किरणों को क्वैंटम किरणें कहते हैं। क्वैंटम किरणें प्रकाश की गति से चलती हैं और उनका तरंग दैर्घ्य (वेव लेंथ) प्रायः एक सेंटीमीटर होता है। उनकी फ्रीक्वेंसी एक अरब 'इर्त्स' तक होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि क्रमशः क्षीण होते जाने पर भी वे लाखों मील की दूरियाँ पार कर लेती हैं। अभी इनकी विस्तृत खोज संभव नहीं हो सकी है। इन क्वैंटम किरणों द्वारा ही

मनुष्य दूरस्थ नक्षत्र-पिंडों का प्रभाव ग्रहण करता है। साथ उसका प्रभाव दूर-दूर तक बिखरता भी रहता है।

भौतिक विज्ञान परमाणु सत्ता की सूक्ष्म प्रवृत्ति का विश्लेषण करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँच रहा है कि एक ही अणु में सक्रिय दो इलेक्ट्रॉनों को पृथक दिशा में खदेड़ दिया जाए तो भी उनके बीच पूर्व संबंध बना रहता है। वे कितनी ही दूर रहें, दर्पण में प्रतिबिंब की तरह अपनी स्थिति का परिचय एक-दूसरे को देते रहते हैं। एक इलेक्ट्रॉन को किसी तरह प्रभावित किया जाए तो इतनी दूर चले जाने पर भी दूसरा पहले इलेक्ट्राँन के समान ही प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। इस सत्य का प्रतिपादन करते हुए आइन्स्टीन, रोजेन, पाटोल्स्की जैसे महान वैज्ञानिकों ने भी यह माना है कि इस छोटे-से घटक की यह गति निःसंदेह एक विश्व-व्यापी ड्रामे का ही छोटा रूप हो सकता है।

डॉ० एफ० केफ्रा ने तो यहाँ तक स्वीकार कर लिया है कि परमाणु का प्रत्येक घटक विश्व-ब्रह्मांड का परिपूर्ण घटक है अर्थात प्रत्येक अणु में ब्रह्मांड सत्ता ओत-प्रोत है। अणु में ही विराट ब्रह्मांड के दर्शन किए जा सकते हैं। यह पारस्परिक संबंध इतने प्रगाढ़ हैं कि इन्हें कभी निरस्त नहीं किया जा सकता। जहाँ इस तरह का प्रयास होता है, वहाँ भयंकर दुष्परिणाम उपस्थित हो उठते हैं।

वैज्ञानिक गेटे ने ब्रह्मांडीय चेतना के अस्तित्व को कटु सत्य के रूप में स्वीकार किया है। रूडोल्फ स्टीनर ने भी गेटे के तथ्यों का पूर्ण समर्थन ही नहीं किया, अपितु उसके आधार भी प्रस्तुत किए हैं। टामस हक्सले ने एक कदम आगे बढ़कर स्वीकार किया है कि ब्रह्मांड में एक मूलभूत चेतना काम कर रही है, जो जीवाणुओं में तथा परमाणुओं में पृथक्-पृथक् ढंग से काम करती है। भारतीय दर्शन में ब्रह्म की परा और अपरा दो शक्तियाँ इसी तथ्य का निरूपण करती हैं। इसकी पुष्टि उन्होंने अपनी 'हेवेन एंड हेल' पुस्तक में विस्तार से की है।

परमाणु की इलेक्ट्रॉन प्रक्रिया को यंत्रों से जितना जाना जा सकता है, वह अत्यल्प है। अधिकांश की जानकारी गणितीय सिद्धांतों पर होती है, उसी तरह जीवाणुओं की मूलभूत प्रक्रिया के लिए जो यंत्र बनाया गया है, उसका नाम है—मस्तिष्क। इस यंत्र की योग-पद्धति से सर्वांगपूर्ण जानकारी कर लेने के कारण ही भारतीय दर्शन वेद-वेदांत के उस अलभ्य ज्ञान तक पहुँच गया, पर विज्ञान अभी तक मस्तिष्क के बारे में बहुत ही सीमित जानकारी ही प्राप्त कर सका है। शेष अविज्ञात को अंधकार क्षेत्र 'डार्क एरिया' घोषित किया हुआ है। इसी कारण ब्रह्मांड-व्यापी सूक्ष्म सत्ता से अभी तक उसका तालमेल नहीं हो पाया। परमाणुओं की इलेक्ट्रॉनिक प्रक्रिया का भी अधिकांश हल गणित के रूप में यह मस्तिष्क ही करता है। अतएव ब्रह्मांडीय चेतना का स्वरूप पहचानने से पूर्व मस्तिष्क की अथ-इति जानकारी होनी आवश्यक है। ज्ञात रहे कि जो अतींद्रिय घटनाएँ प्रकाश में आती हैं उनमें प्रधान माध्यम मस्तिष्कीय बोध ही होता है, चाहे वह पूर्वजन्म का ज्ञान हो, पूर्वाभास या भूत-प्रेतों के दर्शन।

मानवीय काया में सन्निहित विलक्षण अति समर्थ अतींद्रिय क्षमताओं की उपलब्धि यद्यपि कठिन योगाभ्यास से ही संभव है, तथापि रेडियो की सुई घुमाते-घुमाते कई बार अनायास ही किसी प्रिय स्टेशन में लग जाती है, जबकि उसका साइकिल नंबर अथवा 'फ्रीक्वेंसी' का पता नहीं होता। उसी प्रकार दुनिया भर में ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं, जिनमें ऐसी क्षमताओं के अयाचित उपलब्ध हो जाने के विवरण मिलते रहते हैं। ये घटनाएँ इस बात की प्रमाण हैं कि मनुष्य उतना ही नहीं, जितना वह स्थूल आँखों से हाड़-मांस के पिंड रूप में दिखाई देता है, अपितु उसकी सूक्ष्म और सनातन सत्ता तो अपने परमपिता की सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सर्वसमर्थ सत्ता से ओत-प्रोत है।

# जो रहस्य है, वह इंद्रिय चेतना से परे

मनुष्यों में तथा मनुष्येतर प्राणियों में दिखाई देने वाली अद्‍भुत और विलक्षण क्षमताओं का कारण व केंद्र जानने के लिए कई स्तर पर प्रयास हुए हैं। वैज्ञानिक अपने ढंग से इनका कारण जानने के लिए प्रयत्नशील हैं। निरीक्षण, परीक्षण, प्रयोग और विश्लेषण ही वैज्ञानिक अध्ययन की पद्धति है। पर अभी तक इन अन्वेषणों से किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता है। आज एक मान्यता बनती सिद्ध होती है तो कल उसका खंडन हो जाता है और दूसरी मान्यताओं की पृष्ठभूमि बन जाती है। वैज्ञानिक अन्वेषणों के अतिरिक्त इन क्षमताओं का कारण व सिद्धि जानने के प्रयास योगविद्या द्वारा भी किए जाते हैं। योगविद्या के आचार्यों, योगियों द्वारा भी यह प्रयास किए गए हैं और उन्हें इस क्षेत्र में न केवल सफलता मिली, बल्कि अपने प्रयोग और अन्वेषण द्वारा वे विलक्षण सिद्धियाँ भी प्राप्त कर सके।

इसका कारण है सत्य तक पहुँचने की दृष्टि। विज्ञान, सिद्धियों और अद्‍भुत विशेषताओं का कारण स्थूलशरीर में ही खोज रहा है, जबकि योग ने इसके लिए चेतना का क्षेत्र पहचाना और चुना है। प्राणयों में पाई जाने वाली चेतना का अपना निजी

अस्तित्व है। वह रासायनिक तत्त्वों के मिलन से जन्मती और बिछुड़न से मर जाती हो ऐसी बात नहीं। रासायनिक पदार्थों और परमाणुओं को अपनी इच्छानुसार खींचती-बदलती है एवं प्रयुक्त करती है। इस प्राण चेतना का अपना आकर्षण और प्रभाव है। अपनी आकांक्षा, अभ्यास, प्रकृति एवं आवश्यकतानुसार वह शरीर धारण करती है। शरीर को ही नहीं, वातावरण को भी वह प्रभावित करती है।

वृक्षों की सघनता वर्षा के बादलों को आकर्षित करती है, यह सर्वविदित है। पेड़ कट जाने पर वर्षा घट जाती है। उद्यानों में अभिवृद्धि से मौसम बदलता और बादल खिंचते चले आते हैं। यह वृक्षों में रहने वाली चेतना का आकर्षण एवं प्रभाव है। सृष्टि के इतिहास से अनेकानेक परिवर्तनों की लंबी शृंखला और उनके पीछे तत्कालीन प्राणियों की आकांक्षाओं का दबाव भारी काम करता रहा है। अपने-अपने शरीरों की स्थिति में तथा अपनी इंद्रिय चेतना में भी उनने भारी परिवर्तन कर लिए हैं।

प्राणिजगत की चेतना-अनुभवों का लाभ उठाते हुए, ठोकरों से शिक्षा लेते हुए, भूलों को सुधारते हुए प्रगति के प्रस्तुत स्तर तक पहुँच पाई है। आदिमकाल के डायनासोरों जैसे विशालकाय प्राणी पूँछ, दाँत और पीठ पर आक्रमणकारी शस्त्र साधनों से सुसज्जित थे। तब शायद संघर्ष और विजय का मत्स्य न्याय ही उपयुक्त समझा गया होगा, पर वह प्रयोग सफल न रहा। एक-दूसरे की चमड़ी उधेड़ने और अंडे निगलने की नीति सार्थक सिद्ध नहीं हुई। कायिक दृष्टि से विशाल और सामर्थ्य की दृष्टि से सबल होते हुए भी आदिमकाल के पशु-पक्षी अपनी हिंस्र आदतों के दुष्परिणाम भुगतते हुए अपना अस्तित्व ही गँवा बैठे।

पीछे नया अध्याय प्रारंभ हुआ और नीति बदली। प्राणियों की ममता बच्चों के प्रति बढ़ी और उन्होंने अंडों को घोंसलों में सेने की अपेक्षा पेट में ही पकाने का निश्चय किया। इतना ही नहीं, उन्हें

शरीर रस निचोड़कर दूध भी पिलाया। यह प्रकृति परिवर्तन की एक महाक्रांति थी। हिंसा की निरर्थकता समझी गई और स्नेह-सहयोग भरे अनुदान का आदान-प्रदान क्रम चल पड़ा।

मांसाहारी प्राणियों की मूल चेतना ने अपने शारीरिक अवयव अपनी आवश्यकतानुसार उपलब्ध एवं विकसित किए हैं। पेड़ों की छाया में तथा घास की झाड़ियों में अपने को छिपाए रहने की जिनने आवश्यकता समझी, उनकी चमड़ी का रंग तथा दाग-धब्बे उसी प्रकार के उत्पन्न हो गए। शाकाहारियों को दाँत-आँत की जैसी स्थिति आवश्यक थी, उसी के अनुरूप उनने अपने कलेवरों को प्राप्त कर लिया। घोर शीत में आहार प्राप्त कर सकने की कठिनाई देखकर हिम प्रदेश के रीछों ने उन दिनों गहरी निद्रा में पड़े रहने की आदत बना ली। देश-काल के अनुरूप विभिन्न प्राणियों ने जहाँ अपने को बदला है, यहाँ ऐसे प्रमाण भी उपलब्ध हुए हैं कि अमुक क्षेत्र में बहुसंख्यक प्रबल चेतना संपन्न प्राणियों ने अपनी आवश्यकता के अनुरूप व्यवस्था बदलवा लेने के लिए प्रकृति को सहमत कर लिया।

यह बहुत पुराने जमाने की गई-गुजरी बात हो गई, जब प्राणी को रासायनिक पदार्थों का समूह और उसकी चेतना को जीवाणुओं की सम्मिलित स्फुरणा मात्र कहा गया था और उसे चलता-फिरता पौधा घोषित किया गया था। शरीर के साथ ही जीवन का आदि और मरण के साथ अंत होने की बात भी कभी-कभी विज्ञान क्षेत्र से उठी थी, पर अब उस मान्यता में लगभग आमूल-चूल परिवर्तन कर लिया गया है। मरणोत्तर जीवन के प्रमाण इतने अधिक मिले हैं कि उन्हें झुठलाया जा सकना संभव नहीं रहा। पुनर्जन्म की घटनाएँ आए दिन सामने आती हैं। ऐसे बालक जन्मते रहते हैं, जो पूर्वजन्म की अपनी स्थिति को स्मृति के आधार पर प्रामाणिक सिद्ध कर सकें। प्रेतात्माएँ कैसी होती हैं, कहाँ रहतीं और क्या करती हैं ? इस संबंध में अभी बहुत जानना शेष है, पर उनके अस्तित्व को अब

अप्रामाणिक ठहरा देना संभव नहीं। इस संदर्भ में भी इतने अधिक प्रमाण मिलते रहते हैं कि इन्हें अंधविश्वास या भ्रांति कह देने से काम नहीं चल सकता।

परमाणुवादी पदार्थ विज्ञान ने आत्मा के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार किया है और यह प्रयत्न किया है कि उस अस्तित्व की संगति किसी प्रकार प्रकृति की विज्ञान सम्मत व्याख्या के साथ ही बैठ जाए।

आत्मसत्ता के अस्तित्व के संदर्भ में अधिक सुबोध प्रकाश टामस एडिसन ने डाला है। फोनोग्राफ रोशनी के बल्ब आदि के आविष्कर्त्ता इस प्रख्यात विज्ञानी का कथन है कि "प्राणी की सत्ता उच्चस्तरीय विद्युत कण गुच्छकों के रूप में रहती है। मरने के बाद भी यह गुच्छक विघटित नहीं होते और परस्पर सघन संबद्ध बने रहते हैं। ये गुच्छक बिखरते नहीं वरन मरने के उपरांत अनंत आकाश में भ्रमण करने के उपरांत पुनः जीवन-चक्र में प्रवेश करते और नया जन्म धारण करते हैं। ये गुच्छक मधुमक्खियों के झुंड की तरह हैं। पुराना छत्ता वे एक साथ छोड़ती और नया छत्ता एक साथ बनाती हैं। इसी प्रकार उच्चस्तरीय विद्युत कणों के गुच्छक अपने साथ स्थूलशरीर की साधन सामग्री और अपनी आस्थाओं तथा संवेदनाओं को साथ लेकर जन्मते-मरते रहने पर भी अमर बने रहते हैं।"

क्वांटम थ्योरी के परिपूरक सिद्धांत ने यह सिद्ध कर दिया है कि जड़ और चेतन की सत्ता एक-दूसरे से भिन्न स्तर की दिखते हुए भी वस्तुतः उनके बीच सघन तादात्म्य मौजूद है। 'पदार्थ' एक स्थिति में ठोस रहता है, पर दूसरी स्थिति में वह अपदार्थ बन जाता है। इस प्रकार जड़, चेतन में और चेतन, जड़ में परिणत हो सकता है। मन की सत्ता शरीर रूप में, पदार्थ रूप में प्रकट हो सकती है और अमुक स्थिति में पहुँचकर पदार्थ भी बन सकती है।

विज्ञानी हाइजेनबर्ग का प्रतिपादन है कि अंतरिक्ष में अमुक स्थिति पर पहुँचने पर परमाणु पदार्थ न रहकर अपदार्थ में, ऊर्जा में परिणत हो जाते हैं। पदार्थ सत्ता परिधि, काल और रूप के ढाँचे में बँधी है। मनःसत्ता की अनुभूतियाँ, स्मृतियाँ, विचार और विंब के रूप में व्याख्या होती है। इतना अंतर रहते हुए भी उन दोनों के बीच अत्यधिक घनिष्ठता है। यहाँ तक कि वे दोनों एक-दूसरे को प्रभावित ही नहीं, वरन परस्पर रुपांतरित भी होते रहते हैं।

इस तथ्य को नोबुल पुरस्कार विजेता यूजोन बिगनर ने और भी अधिक स्पष्ट किया है। वे कहते हैं कि यह जान लेना ही पर्याप्त नहीं कि वस्तुओं की हलचलों से चेतना ही प्रभावित होती है, वस्तुस्थिति यह है कि चेतना से पदार्थ भी प्रभावित होता है।

रूस के इलेक्ट्रॉनिक विज्ञानी सेमयोन किर्लियान ने एक ऐसी फोटोग्राफी का आविष्कार किया है, जो मनुष्य के इर्द-गिर्द होने वाली उसकी विद्युतीय हलचलों का छायांकन करती है। इससे प्रतीत होता है कि स्थूल शरीर के साथ-साथ किसी सूक्ष्मशरीर की भी सत्ता विद्यमान है और वह ऐसे अविज्ञात पदार्थों से बनी है, जो इलेक्ट्रॉनों से बने ठोस पदार्थ की अपेक्षा भिन्न भी है और अधिक गतिशील भी।

विज्ञान विश्लेषण के अनुसार मनुष्य विद्युत आवेगों से संपन्न एक प्राणी है। वह अदृश्य ऊर्जाओं के समुद्र में तैरता है। हर मनुष्य में अपने स्तर के कुछ विशेष चुंबकीय प्रवाह उठते हैं और वे अपने सजातीय ऊर्जा तत्त्वों को इस निखिल आकाश में से खींचकर अपने में धारण करते रहते हैं। साथ ही मनुष्य अपनी इन चुंबकीय विशेषताओं को अंतरिक्ष में बिखेरता भी रहता है। उसका यह ग्रहण और प्रक्षेपण क्रिया-कलाप निरंतर चलता रहता है। अदृश्य ऊर्जाओं से वह प्रभावित होता है और उनमें अपना योगदान सम्मिलित करता है। इसी आकर्षण-विकर्षण में मृत आत्माओं के साथ

संपर्क स्थापित करना और आदान-प्रदान का क्रम चल पड़ना भी संभव हो सकता है।

ख्यातिनामा वैज्ञानिक यू० ई० बर्नार्ड का कथन है कि अभी मनःतत्त्व के बारे में हमारी जानकारी बहुत स्वल्प है, पर वह दिन दूर नहीं जब चेतना के उन रहस्यों का उद्घाटन होगा, जो उपलब्ध भौतिक शक्तियों की तुलना में कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। निकट भविष्य में यह संभव हो सकेगा कि मनःतत्त्व की शक्ति से पदार्थों का गठन, विघटन एवं रूपांतरण हो सके। इसी प्रकार यह भी संभावना है कि संकल्प शक्ति के सहारे मनुष्य अपने शरीर में अभीष्ट परिवर्तन प्रस्तुत कर सके।

मनुष्य शरीर के संबंध में अध्यात्म की वैज्ञानिक व्याख्या यह है कि 'थ्री डाइमेंशन ऑव स्पेस एंड वन डाइमेंशन ऑंव ट्यून' के समन्वय से यह अद्भुत निर्माण संभव हुआ है। इनमें जो अनुपात है, वही मनुष्य की वर्तमान स्थिति का आधार है। यदि इस अनुपात में थोड़ा-सा हेर-फेर संभव हो सके तो स्थिति में इतना अंतर हो सकता है कि आज का सामान्य मनुष्य कल अनेक कसौटियों पर असामान्य सिद्ध हो सके।

प्राणियों को चेतन का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार कर लेने और उसका प्रभाव पदार्थों पर पड़ने के वैज्ञानिक निष्कर्ष ने उस बचपन से छुटकारा पा लिया, जिसमें आत्मा का अस्तित्व ही अस्वीकार कर दिया गया था और प्राणियों के जन्म-मरण को रासायनिक पदार्थों की एक विशेष हलचल ठहराया गया था। अब प्राणिसत्ता को चेतना घटक के रूप में जाना-माना जा रहा है। आत्मा का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार करने में अब वैज्ञानिक आना-कानी, बहानेबाजी मात्र कही जा सकती है। वह दिन दूर नहीं, जब इस संदर्भ में आड़े आ रहा असमंजस भी समाप्त होकर रहेगा।

अब दूसरा प्रश्न है परमात्मसत्ता का, उसे विज्ञान ने ब्रह्मांडीय चेतना के रूप में स्वीकार किया है। आत्मा को अर्द्धचेतन और

अर्द्धजड़ के रूप में ही अभी विज्ञान ने मान्यता दी है। इसी अनुपात से परमात्मा को भी अर्द्ध ब्रह्म और अर्द्ध प्रकृति के रूप में स्वीकारा है। काम इतने से भी चल सकता है। अध्यात्म को यह स्थिति भी स्वीकार है। अर्द्धनारी नटेश्वर की प्रतिमाओं में इस मान्यता की स्वीकृति है। ब्रह्म और प्रकृति का युग्म ब्रह्म विद्या के तत्त्वदर्शन ने स्वीकार किया है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश अपनी-अपनी पत्नियों को साथ लेकर ही चलते हैं। अन्य देवताओं में से भी कदाचित ही कोई कुमार या विधुर हो। प्रकृति और परमात्मा के समन्वय से जीवात्मा की उत्पत्ति हुई है, ऐसे प्रतिपादन ब्रह्मविद्या की अनेक व्याख्याओं में उपलब्ध हैं।

विज्ञान अपनी भाषा में परब्रह्म को, परमात्मा को 'ब्रह्मांडीय चेतना' के रूप में स्वीकार करने लगा है और उसका घनिष्ठ संबंध जीव-चेतना के साथ जोड़ने में उसे अब विशेष संकोच नहीं रह गया है। यह मान्यता जीव और ब्रह्म को अंश और अंशी के रूप में मानने की वेदांत व्याख्या से बहुत भिन्न नहीं है।

अब विज्ञान वेत्ताओं ने एक ब्रह्मांडीय ऊर्जा का अस्तित्व स्वीकार किया है। इससे पूर्व पृथ्वी पर चल रही भौतिकी को ही पदार्थ विज्ञान की सीमा माना जाता था, पर अब एक ऐसी व्यापक सूक्ष्म सत्ता का अनुभव किया गया है, जो अनेक ग्रह-नक्षत्रों के बीच तालमेल बिठाती है। पृथ्वी पर 'इकॉलॉजी' का सिद्धांत प्रकृति की एक विशेष व्यवस्था के रूप में अनुभव कर लिया गया है। वनस्पति, प्राणी, भूमि, वर्षा, रासायनिक पदार्थ आदि के बीच एक संतुलन काम कर रहा है और वे सब एक-दूसरे के पूरक बनकर रह रहे हैं। जड़ समझी जाने वाली प्रकृति की वह अति दूरदर्शिता पूर्ण चेतन व्यवस्था उन भौतिक विज्ञानियों के लिए सिर दरद थी, जो पदार्थ के ऊपर किसी ईश्वर जैसी चेतना का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते। अब ब्रह्मांडीय ऊर्जा उससे भी बड़ी बात है। ग्रह-पिंडों के बीच एक-दूसरे के साथ

आदान-प्रदान की, सहयोग-संतुलन की जो 'इकॉलॉजी' से भी अधिक बुद्धिमत्ता पूर्ण व्यवस्था दृष्टिगोचर हो रही है, उसे क्या कहा जाए?

परा मनोविज्ञान की नवीनतम शोधें भी इसी निष्कर्ष पर पहुँची हैं कि मनुष्य चेतना ब्रह्मांड चेतना की अविच्छिन्न इकाई है। अस्तु, प्राणसत्ता शरीर में सीमित रहते हुए भी असीम के साथ अपना संबंध बनाए हुए है। व्यक्ति और समष्टि की मूल सत्ता में इतनी सघन एकता है कि एक व्यक्ति समूची ब्रह्मचेतना का प्रतिनिधित्व कर सकता है।

कुल मिलाकर यह कि इस संसार की समस्त गतिविधियाँ सुव्यवस्थित रीति से चल रही हैं। प्रकृति के नियम ऐसे हैं, जिनमें व्यतिरेक की तनिक भी गुंजाइश नहीं है। जिन नियमों को हम जानते हैं, जिनका पता अभी तक चल नहीं पाया है, उन्हें रहस्य कहते हैं। रहस्य का तात्पर्य उन घटनाओं से है, जो असामान्य होते हैं और जिनके घटित होने के कारणों का पता नहीं है।

## इस संसार में रहस्य कुछ नहीं

ऐसे घटनाक्रमों को दैवी कहकर संतोष कर लिया जाता है। अभी भी सूर्य और चंद्र ग्रहण को असाधारणतः कोई दैवी प्रकोप समझा जाता है। बिजली का कड़कना पिछड़े इलाकों में देवता-दैत्यों के विग्रह का प्रतीक है। विज्ञान के विद्यार्थी इन्हें प्रकृति क्रम की एक नियत विधि-व्यवस्था के अंतर्गत प्रकट होने वाले सामयिक घटनाक्रम मात्र मानते हैं। उन्हें ऐसे कारणों में आश्चर्य जैसी कोई बात प्रतीत नहीं होती।

मिश्र के पिरामिडों को 'जादुई' माना जाता है और उनके निर्माण की अलौकिकताओं का संबंध किन्हीं देवी-देवताओं के साथ जोड़ा जाता है। अब उन आधारों का पता लगाया जा रहा है, जिनके सहारे इन निर्माणों में कई प्रकार के 'अद्भुत' दृष्टिगोचर होते हैं।

इलेक्ट्रॉनिक विज्ञानी ऐरिक मेहलोइन ने यह सिद्ध किया है कि पिरामिडों में पाई जाने वाली सभी अलौकिकताएँ आज भी उन्हीं वैज्ञानिक नियमों के आधार पर खड़ी की जा सकती हैं, जिनके सहारे कि वे प्राचीनकाल में की गई थीं। उनने अठारह इंच ऊँचा एक पिरामिड माडल प्लेक्सीग्लास का बनाया है। उसके भीतर मांस के टुकड़े तथा अन्य पदार्थ उसी स्थिति में रखे गए, जैसे कि पिरामिडों में रखे हुए हैं। प्रायः सभी पदार्थ वही प्रतिक्रिया उत्पन्न करने लगे, जो उन प्राचीन निर्माणों में पाई जाती और जादुई कही जाती हैं।

ताबूतों में बंद 'ममी' हजारों वर्ष बाद भी क्यों सुरक्षित हैं? पिछले लोग भूत-प्रेतों की चौकीदारी मानते थे, पर अब प्रतीत हुआ है कि जैसा वातावरण पिरामिडों के बाहर और भीतर है, वैसा ही बना लेने पर मांस की सड़न रुक सकती है और वैसे ही रहस्य दृष्टिगोचर हो सकते हैं, जैसे कि पिरामिडों की कथा-गाथाओं के साथ जुड़े हुए हैं।

आग के बारे में यह मान्यता सर्वविदित है कि उसके जलने के लिए ईंधन और ऑक्सीजन दोनों की आवश्यकता है। वे दोनों जब तक उपलब्ध रहेंगे, तब तक आग जलेगी। एक के भी समाप्त होने पर वह बुझ जाएगी, किंतु ऐसे प्रमाण भी मिले हैं, जिनमें इस सर्वविदित मान्यता का खंडन होता है। मामूली आकार के दीपकों में भरी हुई चिकनाई कुछ घंटों ही चल सकती है, पर यदि कोई छोटा दीपक सैकड़ों वर्षों तक जलता रहे तो ईंधन के आधार पर अग्नि प्रज्वलन का सिद्धांत कट जाता है। यही बात ऑक्सीजन के संबंध में भी है। एक बंद संदूक के भीतर की हवा दो-चार दिन ही काम दे सकती है, उतने से घेरे की हवा सैकड़ों वर्षों तक किसी दीपक का काम दे सकती है, इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। तो भी ऐसे प्रमाण पाए गए हैं, जो अग्नि विज्ञान की प्रचलित मान्यताओं के सही-गलत होने के संबंध में प्रश्न-चिह्न लगाते हैं।

इतिहासकार विलियम कैमडन ने अपनी पुस्तक 'ब्रिटेन' में पुराने खंडहरों में खुदाई में मिले ऐसे जलते दीपकों का वर्णन किया है, जो सैकड़ों वर्षों से बंद खिड़की के भीतर जलते चले आ रहे थे। कैमडन ने इस आश्चर्य का समाधान यह लिखकर किया है कि प्राचीनकाल के रसायनवेत्ता सोने को पिघलाकर तेल जैसा बना देते थे, उसी से यह दीपक सैकड़ों वर्षों तक जलते थे। सेंट अमास्टाइन ने अपनी संस्मरण पुस्तक में लिखा है कि देवी वीनस के मंदिर में एक ऐसा अखंड दीपक खुली जगह में जलता था, जिस पर वर्षा और तेज हवा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। पुरातत्त्व विभाग ने सन् १८४० ई० में स्पेन के कुर्तण क्षेत्र की एक कब्र को खोदकर जलता दीपक उपलब्ध किया था। उस ज्योति को कई सौ वर्ष से जलती आ रही माना गया है।

इटली के नसीदा द्वीप में एक किसान ने अपने खेत में एक कब्र पाई थी। उसे खोदकर देखा गया तो काँच के बरतन में बंद एक ऐसा दीपक पाया जो मुद्दतों से उसी में बंद जल रहा था। इतिहासकार ऐसेलाईस ने ऐस्टेनाग की खुदाई में निकला एक कब्र का वर्णन किया है, जिसमें जलता हुआ दीपक पाया गया। उसके पास ही अभिलेख पाया गया, जिसमें लिखा था—खबरदार, कोई दीपक को छुए नहीं, यह देवता पलोटी का उपहार है। ऐसेलाईस ने इस दीपक को चौथी शताब्दी में जलाया गया माना है।

अनुसंधानकर्त्ता ओडोपेन्सी रोलेस ने सम्राट कान्स्टेट क्लोर्स के राजमहल का वर्णन किया है और लिखा है कि उसमें कभी न बुझने वाले दीपक जला करते थे। उनमें मामूली तेल नहीं, वरन् कोई विशेष रासायनिक पदार्थ जलता था। सिसरो की बेटी टोल्या की कब्र में भी एक ऐसा ही दीपक पाया गया था, जो बिना तेल और हवा के जल रहा था। उसे हवा में निकाला गया तो तुरंत बुझ गया।

उड़नतश्तरियों के संबंध में पिछले ५० वर्षों से बहुत चर्चा चली है। उनके आँखों देखे विवरण इतने अधिक छपे और रिकार्ड किए गए हैं कि उन्हें कपोल-कल्पनाएँ, मनगढ़ंत कहकर झुठलाया नहीं जा सकता। अप्रेल १९७७ में उड़नतश्तरियों के संबंध में विचार करने के लिए एक अंतरराष्ट्रीय कांग्रेस अमेरिका में संपन्न हुई। उनमें अनुसंधानकर्त्ताओं ने अपने विभिन्न निष्कर्ष बताए। उनमें से एक शोधकर्त्ता सालवाडोर फ्रीक्सेडो ने कहा—अच्छा हो यह शोध भौतिक विज्ञान तक सीमित न रहे, इसमें आत्मविद्याविशारद भी भाग लें और तलाश करें कि क्या इसमें किन्हीं प्रत्यक्ष या अदृश्य प्राणियों की हलचलें तो जुड़ी हुई नहीं हैं।

अंतरिक्षविज्ञानी एलन हाईनेक का कथन है—वे भौतिक क्षेत्र की ही इकाइयाँ हैं। अभी बहुत से प्रकृति रहस्य जानने के लिए शेष हैं। उन्हीं में से एक उड़नतश्तरियों का प्रसंग भी सम्मिलित रखा जाना चाहिए और उस संदर्भ में धैर्य एवं प्रयत्नपूर्वक प्रयत्न किया जाना चाहिए।

अमेरिकी वायु सेना के एक जाँच कमीशन ने अपने देशवासियों को आश्वस्त किया था कि वे जो भी हों सार्वजनिक सुरक्षा के लिए उनसे कोई खतरा नहीं है। इतने पर भी जनता को कोई समाधान न हो सका और यह भय बना ही रहा कि यदि वे कभी नीचे उतर आईं तो न जाने क्या कहर बरसाने लगेंगी?

मानसिक रोग और स्नायविक दुर्बलता से उत्पन्न ज्ञान-तंतुओं की विकृतियाँ भूत-पलीतों का सृजन करती हैं। किंवदंतियों और अंधविश्वासों का जाल-जंजाल उन्हें इस प्रकार धुएँ से बादल गढ़ देता है मानो वे सचमुच ही चोर-उचक्कों की तरह हर किसी को परेशान करने पर उतारू हो रहे हों।

जादूगरी, बाजीगरी के अनेकों खेल लोगों को अचंभे में डाल देते हैं और लगता है कि वह किसी जिन्न-दैत्य की करामात है।

इसका खंडन प्रायः भले बाजीगर करते भी रहते हैं और यही बताते हैं कि यह केवल हाथ की सफाई है, फिर भी कितने ही अंधविश्वासी उन्हें चमत्कार ही कहते रहते हैं।

स्मरण रखने योग्य यही है कि विश्व ब्रह्मांड अपने आप में रहस्य है, उसके नियम-विधान भी रहस्य जैसे हैं, उसके अतिरिक्त वैसा कोई रहस्य नहीं है जैसा कि अंध-विश्वासी क्षेत्र में फैला हुआ है।

इन रहस्यों को इंद्रियचेतना से परे कहा जाता है। शरीर और मस्तिष्क की शक्तियाँ प्रत्यक्ष और सर्वविदित हैं। शरीर में श्रम और मस्तिष्क में सोचने-समझने की, विचार करने की शक्तियों को भी सभी कोई जानते, मानते और विश्वास करते हैं। विज्ञान ने इन शक्तियों को अपनी भाषा में अद्‌भुत और विलक्षण कहा है तथा इन प्रत्यक्ष शक्तियों को ही देखकर प्रकृति के कौशल को अद्वितीय बताया है। भौतिक विज्ञान इतना ही जानता है, परंतु वह इस बात को नहीं जान पाया है कि मनुष्य और अन्य प्राणियों में अतींद्रिय चेतना भी विद्यमान है। भौतिक शक्तियाँ तो स्थूल नियमों से परिचालित होती हैं। विज्ञान उन नियमों की परिभाषा करने में भी सफल हुआ है, पर अतींद्रिय शक्तियाँ जिन सूक्ष्म नियमों के अनुसार काम करती हैं, उनकी व्याख्या कर पाना अभी संभव नहीं हो सका है।

हाड़-मांस की बनी काया उन्हीं नियमों का पालन करेगी, जो उसके लिए निर्धारित हैं। इसी प्रकार मस्तिष्क भी उतना ही सोचेगा, जो उसने सीखा है, परंतु सामान्य लौकिक ज्ञान की सीमा से परे कई बार ऐसा कुछ भी देखने को मिलता है, जिससे विदित होता है कि स्थूलशरीर और ज्ञात मस्तिष्क से अलग भी शरीर के भीतर अंतरंग चेतना में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जो शारीरिक मर्यादाओं से प्राप्त न हो सकने वाली जानकारी प्राप्त कर लेती हैं। इस जानकारी का आधार मनुष्य और जीवधारियों में

विद्यमान उस चेतना को बताया जाता है, जिसे अतींद्रिय कहते हैं। उसे झुठलाया नहीं जा सकता।

यदि भौतिक विज्ञान के अनुसार जीवधारी को जड़ प्रकृति का ही एक स्थूल उत्पादन कहा जाए तो अतींद्रिय चेतना का कोई आधार नहीं मिल सकेगा, क्योंकि तब तो प्राणी एक 'चलता-फिरता वृक्ष' ही ठहरा और उसकी शारीरिक-मानसिक हलचलें शरीर के नियमों से बाहर कैसे जा सकती हैं। लेकिन विज्ञान की यह मान्यता भी ध्वस्त होने लगी है। जार्जिया विज्ञान एकेडमी के शरीरशास्त्री डॉ० आई० एस० बेकेताश्विली ने एक काकेशियायी कुत्ते 'त्स्वाला' की गतिविधियों और क्रिया-कलापों का अध्ययन करने के बाद कहा कि प्राणधारियों में एक ऐसी चेतनसत्ता भी है, जो शरीर के नियमों से बँधी हुई नहीं है और वह इंद्रियों का प्रत्यक्ष सहारा लिए बिना भी काम कर सकती है। ऐसे काम, जो आँख-कान के बिना संभव नहीं होते, वे भी उस चेतनसत्ता के द्वारा संपन्न हो जाते हैं।

त्स्वाला की कथा जार्जिया (रूस) निवासियों के घर-घर में प्रचलित है। वह इतना स्वाभाविक और कर्त्तव्यपरायण था कि लोग उसकी तुलना वफादार घरेलू नौकरों से किया करते थे। त्स्वाला (कुत्ता) अपने मालिक के जानवरों को चराने प्रायः जंगल में अकेला ही जाया करता था। जानवरों को कहाँ चरना है, कहाँ बैठना है, कहाँ पानी पीना है, कोई जानवर झुंड से बाहर निकलकर इधर-उधर बिछुड़ न जाए, इस बात का वह पूरा ध्यान रखता था। जिस क्षेत्र में वह अपने मालिक के साथ रहता था, उसमें भेड़िये और तेंदुए भेड़-बकरियों की घात लगाए रहते थे। त्स्वाला उनसे जूझने के लिए सदैव मुस्तैद रहता था और जब भी ऐसा अवसर आता तो वह आक्रमणकारी हिंस्र पशु का डटकर मुकाबला करके या तो उसे भगा देता अथवा मार गिराता।

एक बार किसी दूर के पशु फार्म पर 'त्स्वाला' की जरूरत पड़ी। मालिक ने उसे वहाँ भेज दिया। त्स्वाला वहाँ जाने में अड़ियलपन से काम ले रहा था, इसलिए उसे एक ट्रंक में बंद कर सैकड़ों मील दूर स्थित उस नए फार्म में ले जाया गया। यहाँ उसे बाँधकर रखा गया, लेकिन त्स्वाला का बुरा हाल था। न उसने खाया न कुछ पिया केवल रोता रहा और एक दिन मौका देखकर रस्सी तुड़ाकर भाग निकला। यद्यपि उसे आँखें बाँधकर ट्रंक में डालकर लाया गया था, फिर भी उसने अंतःप्रेरणा के आधार पर दौड़ लगाई और सैकड़ों मील दूर अपने मालिक के पास तिब्लिसी क्षेत्र में आ गया।

कुत्ते ने न रास्ता देखा था न वह मार्ग के चिह्नों को ही पहचानता था, फिर किस प्रकार वह इतनी दूर आ गया। डॉ० बेकेताश्विली को किसी प्रकार इस घटना का पता चला तो उन्हें लगा कि प्राणधारियों में कोई ऐसी अतींद्रिय चेतना भी होती है, जिसके सहारे वे प्रधान ज्ञानेंद्रिय आँख का काम बिना आँख के भी कर लेते हैं। इस घटना से तो स्पष्ट ही यह निष्कर्ष निकलता है। फिर भी इसकी पुष्टि के लिए डॉ० बेकेताश्विली ने एक बिल्ली पाली और उसका नाम रखा 'ल्योबा'।

ल्योबा को नियत समय पर खाना दिया जाता। उसके खाने की तश्तरी कमरे के एक कोने पर दूर रख दी जाती। आँख बाँधकर ल्योबा उस कमरे में छोड़ दी जाती। शुरू में तो उसे गंध के आधार पर भोजन तक पहुँचने में कुछ कठिनाई होती। पीछे वह बिना किसी कठिनाई के अपने भोजन तक पहुँच जाती थी।

गंध के आधार पर ही वह ऐसा कर रही है। यह बात वैज्ञानिक जानते थे। अतः उन्होंने ल्योबा के अतींद्रिय ज्ञान की परीक्षा के लिए तश्तरी में कुछ पत्थर के टुकड़े भी रखे। आँखें बाँध दी गई और सोचा यह गया कि गंध तो सारे प्लेट में से उठती है, इसलिए बिल्ली उसमें रखी हुई किसी भी चीज को मुँह मार सकती है,

लेकिन देखा गया कि ल्योबा ने बहुत सँभलकर अपना खाना खाया और पत्थर के टुकड़ों को चाटा तक नहीं। इसी प्रकार कुछ दिन में ही वह रास्ते में रखी हुई कुर्सी, संदूक आदि को बचाकर इस तरह अपना रास्ता निकालने लगी कि उसमें से किसी के गिरकर टूटने या चोट पहुँचने का डर न रहे। स्मरण रहे, इन प्रयोगों में भोजन की तश्तरी अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग कमरों में रखी गई। बिल्ली सभी स्थानों पर पहुँच जाती।

बेकेताश्विली ने यही प्रयोग 'जिल्डा' नामक एक कुत्ते पर और किया। जिल्डा की आँखों पर भी पट्टी बाँध दी जाती और उसे प्रयोगशाला में छोड़ दिया जाता। जिल्डा कुछ ही दिनों में सारी बातें ताड़ गया और बिना किसी वस्तु से टकराए बुलाई गई आवाज पर पहुँचने लगा।

इन सब प्रयोगों से एक ही निष्कर्ष प्रतिपादित किया जा सकता है कि प्राणधारियों में विद्यमान चेतनसत्ता इंद्रियों की दास नहीं है। इंद्रियाँ तो उसके लिए उपकरण मात्र का काम करती हैं, वह उन पर निर्भर नहीं है। सामान्य जीवन में भी देखा जा सकता है कि अंधे व्यक्ति छड़ी के सहारे नेत्र वालों की ही तरह चलने लगते हैं। लँगड़े या अपंग व्यक्तियों की भुजाएँ और लोगों की अपेक्षा बलिष्ठ होती हैं और वे उनके द्वारा लाठी या बैसाखियों का सहारा बड़ी आसानी से लेकर चल लेते हैं। जन्मजात गूँगे-बहरे व्यक्ति किसी के चेहरे और हाव-भाव को देखकर ही उसके मंतव्य को समझने लगते हैं। ये सब इस बात का प्रतीक हैं कि चेतना इंद्रियों की दास या उन पर आश्रित नहीं है बल्कि इंद्रियाँ उनके उपकरण हैं, जिनका अभाव होने पर चेतना ज्ञान के लिए दूसरी वैकल्पिक व्यवस्था भी कर लेती है। अतींद्रिय ज्ञान का यही आधारभूत सिद्धांत है। डॉ० बेकेताश्विली ने लिखा है कि यह क्षमता हर प्राणी में विद्यमान रहती है। किसी में कुछ कम तो किसी में कुछ अधिक। कुछ लोग इस तरह की

क्षमताएँ जन्मजात लेकर आते हैं और कुछ प्रयत्न करके उन्हें जगा या बढ़ा लेते हैं।

इन क्षमताओं की जन्मजात विद्यमानता के कई उदाहरण देखने को मिलते हैं। सन् १९७६ में अमेरिकी पत्रिका 'डेनवर' ने किसी पाठक की लिखी हुई एक भविष्यवाणी प्रकाशित की थी कि १९७७ ई० के अगस्त महीने में सेनफ्रांसिस्को नगर तथा पश्चिमी घाट में भूकंप आएगा। स्मरणीय है आज तक कोई ऐसी मशीन नहीं बन सकी, जो एक वर्ष पूर्व भूकंप की भविष्यवाणी कर सके। लोगों ने इस भविष्यवाणी को कोई खास महत्त्व नहीं दिया, परंतु १३ अगस्त १९७७ को सानफ्रांसिसको के नगर और पश्चिमी तट वाले क्षेत्र में भूकंप के तेज झटके लगे।

कई व्यक्तियों में इस प्रकार की प्राकृतिक घटनाओं के पूर्वाभास की क्षमता होती है। वैज्ञानिक भले ही इन्हें स्वीकार न करें, परंतु ऐसी अनेक घटनाएँ पश्चिमी देशों में घटी हैं, जिनमें साधारण लोगों ने भूस्खलन की भविष्यवाणी कर दी और प्रयोगशालाएँ कुछ न कह सकीं। नवंबर १९७४ में अमेरिका के डॉ० डेविड एम० स्टूवार्ड ने कैलीफोर्निया रेडियो पर घोषणा की थी कि पिछले दिनों हुए विलक्षण आभास के आधार पर वे यह कह रहे हैं कि इस महीने के चौथे वृहस्पतिवार को समुद्र तट पर भूकंप आएगा। भूकंप तेज होगा, किंतु उससे जन-धन की कोई विशेष क्षति नहीं होगी।

२८ नवंबर १९७४ उस माह का चौथा गुरुवार था। उसी दिन शाम को रेडियो ने समाचार प्रसारित किया कि आज शाम तीन बजे कैलीफोर्निया के मध्य समुद्री तट पर हेलिस्टर के पास भूकंप के तेज झटके लगे हैं, परंतु उससे कोई विशेष क्षति नहीं हुई है। इस प्रकार के और भी प्रसंग हैं। प्राकृतिक घटनाओं के पूर्वाभास की क्षमता यद्यपि किन्हीं-किन्हीं मनुष्यों को होती है, किंतु पशु-पक्षियों की कई जातियाँ तो इन घटनाओं को तुरंत ताड़ लेती हैं और अपना व्यवहार बदल लेती हैं।

अमेरिका के विख्यात मौसम विशेषज्ञ डॉ० लागन इस दिशा में वर्षों से परिश्रम कर रहे हैं। उनका कहना है कि भूकंप से पहले पशु-पक्षियों के व्यवहार में आए परिवर्तनों को सही ढंग से पहचान लिया जाए तो घंटों नहीं, दिनों पहले उससे होने वाले नुकसान से बचाव के प्रयास किए जा सकते हैं।

चीन में भी इस विषय में काफी शोधकार्य हुआ है, क्योंकि वहाँ के कई क्षेत्रों में एक वर्ष में पाँच-पाँच, छह-छह बार भूकंप आते हैं। इन मौसम विशेषज्ञों ने विधिवत एक चार्ट तैयार किया है, जिसमें यह बताया गया है कौन-कौन से पशु-पक्षी भूकंप के समय अपना व्यवहार बदल लेते हैं और उनके व्यवहार में किस प्रकार का परिवर्तन होता है। चार्ट में कहा गया है कि जब भूकंप आने की संभावना होती है, तब गाय, भैंस, घोड़े, भेड़, गधे आदि चौपाये बाड़े में नहीं जाते। बाड़े में जाने के स्थान पर वे उलटे भागने लगते हैं। एकाध तरह का चौपाया तो कभी भी ऐसा कर सकता है, परंतु जब अधिकांश या सभी चौपाये बाहर भागने लगें, तो भूकंप की संभावना रहती है। उस समय चूहे और साँप भी अपना बिल छोड़कर भागने लगते हैं, सहमे हुए कबूतर निरंतर आकाश में उड़ानें भरने लगते हैं और वापस अपने घोंसलों में नहीं जाते। मछलियाँ भयभीत हो जाती हैं तथा पानी की ऊपरी सतह पर तैरने लगती हैं। खरगोश अपने कान खड़े कर लेते हैं और अकारण उछलने-कूदने लगते हैं।

जापान भी भूकंपों का देश है और वहाँ किए गए परीक्षणों तथा अध्ययन में भी पशु-पक्षियों के व्यवहार में इसी प्रकार के परिवर्तन नोट किए गए। अमेरिका, इटली तथा ग्वाटेमाला के वैज्ञानिक भी इन परिवर्तनों की पुष्टि करते हैं। उनका कहना है कि भूकंप आने के पहले पृथ्वी का चुंबकीय आकर्षण वायुमंडल को प्रभावित करने लगता है। हवाओं की गति और तापमान में अंतर आ जाता है। धरती और आकाश के बीच का दबाव बढ़ जाता है। ये परिवर्तन बहुत

सूक्ष्म होते हैं, जिन्हें पशु-पक्षी ही पहचान पाते हैं तथा वे अपनी सुरक्षा की व्यवस्था करने लगते हैं।

यह तो सच है कि बहुत सूक्ष्म परिवर्तन, स्थूल परिवर्तनों का बोध इंद्रियों के माध्यम से नहीं होता या सूक्ष्म तरंगें इंद्रियों की पकड़ में नहीं आतीं, उन्हें इंद्रियाँ पहचानने में असमर्थ होती हैं। इसीलिए जिन व्यक्तियों को इनका आभास होता है, वे अतींद्रिय सामर्थ्य से संपन्न कहे जाते हैं। पशु-पक्षियों में यह सामर्थ्य मनुष्यों की तुलना में अधिक बढ़ी-चढ़ी रहती है, क्योंकि वे प्रकृति के समीप रहते हैं, प्राकृतिक जीवन जीते हैं और मनुष्यों की तुलना में कम बुद्धिमान हैं। संभवतः इसी कारण प्रकृति ने अपने इन नन्हें लाड़लों को यह विशेष सामर्थ्य दी है। जो भी हो, यह तो मानना ही पड़ेगा कि कुछ है, जो इंद्रिय चेतना से परे, अतींद्रिय सामर्थ्य से संपन्न है और वह स्थूल की पकड़ से बाहर है। भारतीय मनीषियों ने इस चेतना को परमात्म-सत्ता की ही एक किरण कहा है। उस सत्ता के संपर्क-सान्निध्य स्थापित कर लेने पर जो असामान्य तथा विलक्षण लगता है, वह भी सहज संभव और सुलभ उपलब्ध हो सकता है।

*मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा*